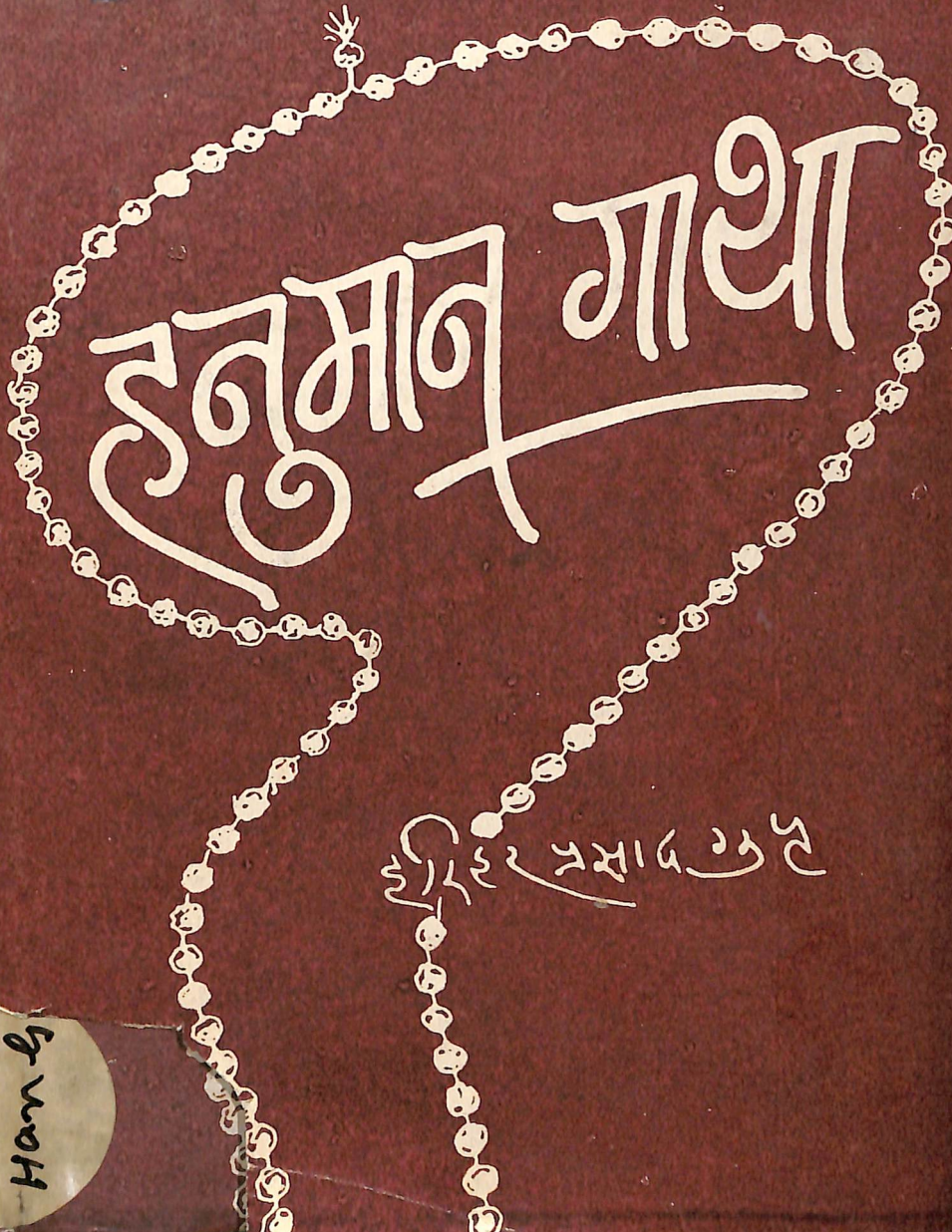


324
R2



हनुमान गाथा

डि. प्रसाद प्र. प्र.

Ham &

हनुमान-गाथा

प्रकाशक :

विवेक

भाषा-साहित्य-संस्थान

१४७ त्रिवेणी रोड, इलाहाबाद-३

सर्वाधिकार (कापीराइट) सुरक्षित

लेखक—डॉ० हरिहर प्रसाद गुप्त

प्रथम प्रकाश : २० जनवरी १९८५

मूल्य : ₹० २०-००

मुद्रक :

इन्द्र मणि जायसवाल

मणि प्रिंटिंग प्रेस

मणि नगर, ६७ पूरा बल्दी

कीटगंज, इलाहाबाद

HANUMAN-GATHA

Rs. 20/00

पुण्यश्लोक पिता
मोहन लाल ऊमर वैश्य

की

पावन स्मृति को—

जो

मुझे क्षय से छुटकारा दिलाने के लिए,

मेरे साथ

कष्ट ही सहते रहे

और

जिन्होंने अपने आयुर्वेद-ज्ञान से

जीवन भर

जनता की निःशुल्क सेवा की—

हरिहर

अपनी बात

इस भाव-कथा के विकास में मेरा अपना विकास छिपा है। जीवन के आरम्भिक वर्ष अस्वस्थता में बीते—मोटे ढंग से किशोर और यौवन की ताजगी मैंने जानी ही नहीं। मेरे नगर मुँगराबादशाहपुर (जौनपुर) से दो-ढाई मील पश्चिम सड़क के किनारे दौलतिया है वहाँ एक हनुमान-मन्दिर है। टहलने जाऊँ तो अतुरता से उनसे अपनी माँग कहूँ—‘अतुलित बलधाम—’ को प्रणाम् कर्तुं ।

दौलतिया के रास्ते में एक बड़ा तालाब है—मन्दिर है भगवान राम-सीता-लक्ष्मण का—यह मेरे पुरुषों का बनाया हुआ प्रसिद्ध है। मेरे बाबा नारायण दास जो बाजार के सबसे बड़े सेठ-साहूकार थे वहाँ नित्य प्रति जाते। भगवान की पूजा-आरती करते। मुझे वे बहुत मानते थे। जब वे बिस्तर पर शाम को लेटते मैं उनका पैर दबाता—मेरी सेवा से प्रसन्न हो वे अपनी मिरजई में चार-छः रुपये निकाल कर दे देते—कहते अंगूर मंगा कर खा लेना। उनके इस दिव्य भाव से मैं उरिन नहीं। एक बार मन में आया कि भाग जाऊँ ध्रुव की तरह तपस्या के लिए देखें भगवान कहाँ है। पर बाबा का प्यार बांधे था। पढ़ने की रुचि होते हुए भी पढ़ाई प्रारम्भ होती और छूट जाती—कभी बुखार, कभी सर्दी-जुकाम, कभी कुछ, कभी कुछ। लखनऊ के सबसे बड़े फिजीशियन डा० कर्नल स्प्रासन ने पिता जी को राय दी पहाड़ ले जाने के लिए। ‘टी.बी.’ का उन्हें सन्देह हुआ। पिता स्व० मोहन लाल भुवाली (नैनीताल के पास) लेकर पड़े रहे पर कुछ हासिल न हुआ। यह सब मेरे हाई स्कूल करने के पहले की कहानी है।

मेरे सच्चे अब्यात्मिक जीवन की गाथा इसी के आस-पास शुरू हुई । स्व० पंडित बदरी नारायण त्रिपाठी एम० ए० (दर्शन) करके रामचरितमानस की कथा कहने मेरे जगर में अपने मित्र स्व० रामशरण मौर्य के अनुरोध पर आए । रामशरण मेरे घनिष्ट थे । महाराज जी के पास बैठता और कथा भावमग्न होकर सुनता । मेरे स्वास्थ्य पर तरस खाकर पिता जी से उन्होंने कहा हरिहर को मेरे साथ प्रयाग भेज दो—मेरे साथ रहे मैं इसे प्राकृतिक चिकित्सा, योग-आसन से ठीक कर दूँगा । मैं साथ हो लिया । कई माह उनके पास रहा—कटघर के एक मकान में । उनसे तर्क करता—ईश्वर होता तो इतना कष्ट मनुष्य न उठाता—कौन कहता है वे करुणानिधान हैं, आदि-आदि । वे मुझे प्रसन्न होने पर 'हरिहराचार्य' कहते और हँसकर कहते तुम नास्तिक हो यह बुरी बात नहीं है पर एक दिन तुम सबसे बड़े आस्तिक-आस्थावादी होगे । उनकी रहनि और उनकी पत्नी, जिन्हें हम माता जी कहते (जो आज भी जीवित हैं), का सेवाभाव मेरे पारमार्थिक दृष्टिकोण का आधार बना । जीवन में यह अनुभव हुआ कि निःस्वार्थ सेवा—रोगी की सेवा—कदाचित् बिना भगवत् समर्पण के संभव ही नहीं । गुरु जी ने जो प्रकाश दिया वही मेरे जीवन का आलोक है । उसी आलोक में साहित्य-सर्जन हो रहा है । ऐसा ही आलोक सब को मिले यही अभिलाषा है ।

हनुमान-गाथा पाठक को प्रेरित करेगी ऐसा विश्वास है ।

७४वें वसंत में प्रवेश

हरिहर प्रसाद

[जन्म : माघ सुदी १, सं० १९६८ वि०—२०-१-१९१२] लक्ष्मी-निवास

२०-१-१९८५ ई०

१४७ त्रिवेणी रोड, इलाहाबाद

हनुमान-गाथा

[हनुमान लंका में माँ सीता के पास]

माँ ! तुम यह क्या कह रही हो ? सेवा और सेवक का संबंध बड़ा प्रेरक-बलप्रद और सुखप्रद होता है । जिस प्रकार प्रेम में आकर्षण है उसी प्रकार सेवा में । दोनों ही मानव के परम पावन भाव हैं—दोनों ही मानव के अस्तित्व के मूल में हैं, दोनों ही सहज स्वाभाविक हैं, दोनों ही मनुष्य की भीतरी गुहा से कहीं से फूटकर बह निकलते हैं, दोनों की ही शक्ति अदस्य है । न प्रेम का विश्लेषण संभव है और न सेवा भाव का । इनके लक्षण बताए जा सकते हैं पर इनका मूल किसी अदृश्य के साथ जुटा है । जिस प्रकार आप का हृदय भगवान श्री राम के साथ प्रेम-प्रणय से एक है उसी प्रकार मेरा हृदय भगवान के श्री चरणों में अनुरक्त है । मुझे उनकी सेवा में ही आनन्द मिलता है । मैं उनकी सेवा क्यों करता हूँ यह नहीं जानता और न इसके जानने की अपेक्षा है । प्रेम और सेवा तर्कगम्य नहीं । ये प्राणि-मात्र के सहज पुनीत भाव हैं । ये लौकिक होते हुए भी अलौकिक हैं । जिस प्रकार माँ के दुग्ध में बच्चे के सारे पोषण तत्त्व भरे पूरे रहते हैं उसी प्रकार प्रेम-सेवा में मानव के पोषण-तत्त्व छिपे रहते हैं । मनुष्य भोजन-पानी से नहीं प्रेम-सेवा से जीवित रहता है । इसका महत्त्व प्राण-वायु से बढ़कर है । हवा-पानी शरीर को जीवित रखने के लिए हैं पर प्रेम-सेवा तो मानव के भाव ही हैं—इनका अभाव ही मृत्यु है । माँ, मेरे पास भाषा नहीं है कि मैं अपने भीतरी भाव को व्यक्त कर सकूँ । प्रेम-सुख, सेवा-सुख अनुभव के विषय हैं । आप तो प्रेम-करुणा-ममता-माया की देवी ही हैं । आप सीता भी हैं राम भी हैं । आप का एकत्व-अद्वयत्व प्रेम-समर्पण का ही रूप है । यही

एकता सेवा और सेवक की भी है। बिना अद्वय हुए जीवन का रस संभव ही नहीं। मेरा बल राम का बल है, मेरा ज्ञान राम का ज्ञान है। मैं राम ही हूँ।

॥१११-॥१११॥

हनुमान, सचमुच तुम राम हो। तुम्हारी वाणी राम की वाणी है, तुम्हारा वन राम का बल है, तुम्हारा तेज राम का तेज है, तुम्हारा भाव राम का भाव है। तुम्हारी उपस्थिति मैं राम की उपस्थिति मानती हूँ। तुम हनुमान के रूप में राम हो। रूप आवरण है—आत्मा को तो शरीर चाहिए सरूप होने के लिए। जिस प्रकार सेवा-भाव सेवक रूप में प्रकट होता है उसी प्रकार आत्मा शरीर रूप में। क्या किसी ने शरीर-आत्मा के भेद का अनुभव किया है? है कोई बिनानी (विज्ञानी) जो जल के बाह्य और भीतर में अन्तर बता सके, है, कोई तत्त्वज्ञानी जो बाह्य वायु और प्राण वायु का भेद निरूपित कर सके, है कोई विस्लेपक जो बाह्य आकाश और भीतर के शून्य का अन्तर बता सके? हनुमान, तुम राम ही हो। तुम्हारा यह अनुभव ही परम ज्ञान है। नाम-रूप का भेद उसके लिए नहीं जिसने एकता का अनुभव कर लिया है। हनुमान, तुम राम और मेरे बीच के प्रेम-सम्बन्ध के अवतार हो। तुम अतिमानव हो। तुम परमार्थ के रूप हो। तुम उसी चेतना के प्रतिरूप हो जो राम के रूप में सर्वत्र व्याप्त है। तुम्हारी प्रेम-चेतना, सेवा-चेतना ही तुम्हारा आलोक है। हनुमान, तुम्हें मैं नर कहूँ, वानर कहूँ, देव कहूँ, पवन-पुत्र कहूँ, तुम सब कुछ हो। तुम एक विशाल ज्योति पुंज हो जिसके आलोक से सृष्टि आलोकित है; तुम ईश्वरीय करुणा हो जिससे जगत् का पोषण होता है, तुम सेवक नहीं सेवा हो। मैं तुम्हें पाकर सचमुच अशोक हो गई हों। अब इस वन में मुझे सर्वत्र तुम्हीं दिखाई पड़ रहे हो—तुम व्याप्त हो मन में, वन में। हनुमान, जाओ राम से कहना मैंने राम को पा लिया है।

माँ, तुम्हारी ममता की धारा मुझे बहा ले गई—मैं तो भूल गया था इस लंका को, इस वन को। मुझे तो अपने राम की भी सुब नहीं रही। मैं कहाँ खो गया था माँ! बताओ न। तुम्हारे सनेह में मैं डूब गया था। क्या सेवा का सुख यही है, क्या यही परमानन्द है, क्या यही 'ब्लिस' है? करुणे,

इस रहस्य को बतलाओ । ज्यों-ज्यों मैं तुम्हारे सजह सनेह की धारा में बहता गया त्यों-त्यों मैं पावन से पावनतर होता गया । मुझे लगा मैं एक निर्मल जल धारा हूँ । धारा का सुख उसके सहज प्रवाह में है । मनुष्य बहना सीखे तभी वह सुखी हो सकता है । अपना कोई बल नहीं । धारा में बहना ही बल है । यह धारा ही किसी राम धारा से जोड़ती है और मनुष्य दिव्य से दिव्यतर हो जाता है । माँ, मुझे वरदान दो कि मैं इस धारा से कभी अलग न होऊँ । एक क्षण का भी वियोग मुझे मृत्यु सा लगता है । यह अभिन्नता ही क्या जीवन का चरम बिन्दु है ! माँ, जो राम के चरणों में बैठकर नहीं पाया वह तुम्हारी कृष्णा-कटाक्ष से मिला । राम ने बल दिया और तुमने वह धारा दी जिसमें अनन्त बल है । माँ, तुम्हारी स्नेह-धारा में माँ के वात्सल्य का, माँ की ममता का, माँ की उदारता की त्रिवेणी है—मैं उसे परिभाषित नहीं कर सकता । क्या मेरे राम ने मुझे इसी अनुभव के लिए तुम्हारे समीप भेजा था । धन्य हो प्रभु, तेरी लीला कौन जान सकता है ? किस माध्यम से कब तुम अपने भक्त को क्या देना चाहते हो कोई नहीं बता सकता है । यही तो तुम्हारी लीला है । कितना सुख है इस लीला का अंग बनने में ! माँ, अब समझ में आया कृष्ण ने उद्धव को गोपियों के पास क्यों भेजा था—इसी ज्ञान के लिए, इसी तत्त्वानुभूति के लिए—मात्र धारा में बहने की कला सीखने के लिए ।

[राम का अदृश्य रूप में उपस्थित होना]

हनुमान ! तुमने जीवन की कला सीख ली है—तुम्हारी आत्मा पावन ही नहीं पावनतम है, तुम्हारी अनुभूति सिद्ध-योगी-संत की संकल्पात्मक अनुभूति है । तुम्हारे जीवन में धर्म का—जीवन और धर्म की एकता का—बाह्य और आभ्यन्तरिक अभेद भाव का सम्यक् अवतरण हुआ है । धर्म, शास्त्रों में नहीं जीवन के व्यवहार में है । जो धर्मपरायण है वह परोपकारपरायण है । धर्म वह ज्योति है जो पूरे समाज को आलोकित करता है । धर्म जीवन का विषय है शास्त्रार्थ का नहीं । धर्म हृदय की

निर्मलता है, विचारों की पवित्रता है, परस्पर व्यवहार की मधुरता है। धर्म प्रेम-आदर-स्नेह-श्रद्धा का पर्याय है। धर्म का आधार है सब के लिए कल्याण की भावना। हनुमान ! तुम धर्म-परोपकार-सेवा के प्रतिरूप हो। तुम्हारा जीवन मानवमात्र के लिए प्रकाश-स्तम्भ है। तुमने सीता की खोज की अर्थात् शक्ति की खोज की—सीता से तुम्हारा मिलन शक्ति से मिलन है। सीता के लिए तुमने विशाल समुद्र लाँघा—अथवा तुम्हारी चारित्रिक दृढ़ता से तुम्हारे लिए समुद्र लाँघना खेल सा हो गया। उत्साह-तत्परता-दृढ़ता-निष्ठा के आगे असंभव संभव हो जाता है। असंभव शब्द आस्थाहीन के शब्द-कोश में है। पराक्रम असंभव नहीं मानता। मैं तुम्हारे अदम्य उत्साह से सीख लेना चाहता हूँ। तुम्हारा हमारा मिलन आकस्मिक नहीं—संयोग मात्र नहीं—यह विधि का विधान है। उसे संसार को, तुम्हारे माध्यम से, ऐसी प्रेरणा देनी है कि समाज स्वार्थ से परमार्थ की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, कायरता से अक्षय बल की ओर चले।

स्वामी, यह आप की ही विभूति है कि हमने अपने को—अपने कर्तव्य को, अपने धर्म को, मनुष्यता के मूल्य को जाना-पहचाना। बिना राम के, बिना ब्रह्म के, बिना सत्-चित्-आनन्द के आलोक के कौन समर्थ है धर्म-मार्ग पर चलने के लिए, कौन पहचान सका है अपने को—अपनी शक्ति को, अपने भीतर बैठे परम ब्रह्म को। जीवन का बोध राम की कृपा का फल है। आत्म-बोध ही जीवन की सफलता है—मानव मूल्यों का पालन बिना तत्त्व-ज्ञान के संभव ही नहीं। जीवन में हलाहल कम नहीं पर उस अमृतत्व के प्राप्त होते ही हलाहल का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। जिसे हम बाधा मानते हैं वही सहायक हो जाता है। वस्तुतः बाधा-कष्ट-कठिनाई-संकट सहायक हैं बाधक नहीं। हाँ, वह दृष्टि चाहिए जिससे संकट अभिशाप नहीं वरदान जान पड़े। यही दृष्टि आत्मबोध है, यही सिद्धि की चरम अवस्था है, यही मानसिक संतुलन अथवा योग है। जिसे जीवन की यह दृष्टि मिल गई वह संसार को राममय देखता है—उसे अपना संकट नहीं रह जाता, वह सबके संकट को अपना मानकर उसे दूर करता है। हे स्वामी ! यह दृष्टि प्रयास

से नहीं आप की भक्ति से, ब्रह्मानुभूति से—सुलभ होती है। आप ने मुझे सीता की खोज की शक्ति दी, आपने जीवन को समझने के लिए मुझे लंका की यात्रा कराई, आप ने प्रेरित किया हमें कठिनाइयों से जूझने के लिए। आपने ही शक्ति दी, आपने ही दृष्टि दी, आपने ही शक्ति से साक्षात्कार कराया।

माँ!—मैं परम भाग्यशाली हूँ जो शक्ति और शक्ति के स्रोत से जुट गया हूँ—मैं वानर से नर हो गया आप के प्रताप से। नर वही है जो नारायण को ही सर्वत्र देखे, जो सारी सृष्टि में उसी एक सत्य का साक्षात्कार करे, जो सबकी सेवा में ही आत्मोन्नति माने, जो हृदय की पावनता को अक्षुण्ण रखे, जिसने भेद-दृष्टि समाप्त कर ली हो। माँ, तुम देख रही हो भगवान् राम को—अदृश्य हैं पर दृश्य हैं भक्त के लिए। भक्त सदा राम के सांनिध्य में रहता है। राम अपने भक्त को एक क्षण के लिए भी असहाय नहीं छोड़ते। माँ, बस तुम्हारी दया-करुणा का यह प्रसाद है। मेरे राम मेरे सामने हैं और तुम तो मेरी माँ ही हो, तुम्हारा वरद हस्त तो हम पर है ही। तुम्हारे कारण ही राम साकेत छोड़कर लंका आए हैं। तुम्हारे बिना तो कोई रूप ही नहीं—उनकी शक्ति तुम्हीं हो। पौरुष का मूल शक्ति है, सेवा का मूल ममता है, परमार्थ का मूल करुणा है—वह सब तुम्हीं हो। तुम्हारा एक नाम नहीं तुम्हारे अनेक नाम हैं। तुम्हीं तो आत्म-ज्योति हो, तुम्हीं बाहर-भीतर की रखवाली करने वाली माँ हो। जिसने तुम्हारा आश्रय पा लिया है अथवा जिसने तुम्हें अपने को समर्पित कर रखा है वही ज्ञानी है। माँ, तुम्हारी करुणा को क्यों नहीं पहचानते लोग? माँ! कुछ ऐसा करो कि समाज से अन्धकार मिट जाय—सर्वत्र उजाला। सबके जीवन में प्रकाश। सभी आनंदमय। माँ, बताओ मार्ग। मैं अपना जीवन इसी लक्ष्य के लिए देना चाहता हूँ।

बेटे हनुमान, अंधकार तभी मिटेगा तब प्रकाश के लिए हम प्रयत्न करेंगे—कर्म-कर्म-कर्म। आलस्य, अकर्मण्यता को छोड़कर जगता-उठना

पड़ेगा। साधना करनी होगी। व्यक्ति-व्यक्ति को समाज के नवनिर्माण में जुटना पड़ेगा। यही राम-भक्ति है। भक्ति मन्दिर में नहीं, सत्कर्म-सद्व्यवहार-सदाचार में है। शक्ति मूर्ति में नहीं अपने भीतर है। उस शक्ति को ही जगाना होगा। मन को एकाग्र करके लक्ष्य में जुट जाना होगा। जो पूरे मन से किसी अच्छे उद्देश्य की पूर्ति में लगा है वही समाज का प्रकाश-स्तम्भ है। समाज व्यक्ति से ही बनता है। समाज का उत्थान व्यक्ति के उत्थान से जुड़ा है। व्यक्ति-समाज एक दूसरे के पूरक हैं। अपने इष्टदेव राम को ही देखो—पूरे समाज के अभ्युदय के लिए उन्होंने व्रत ले रखा है। न उन्हें घर की चिन्ता, न गृहस्थी की, न परिवार की—उनकी एक ही धुन है धर्म की स्थापना, चरित्र की स्थापना, शील की स्थापना। समाज में प्रत्येक को अपनी उन्नति के लिए सुविधा मिले यही वे चाहते हैं। जो दूसरों की साधना में बाधक हैं उनका संहार करना ही उनका लक्ष्य है। राम क्रांति चाहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी हो उन्हें वर्ण भेद में विश्वास नहीं—सबको समान अवसर पूर्ण विकास के लिए। राम चाहते तो राज्य ग्रहण कर प्रजा की सेवा कर सकते थे पर वे तो जन-जन के बीच घूम-घूमकर सबकी सेवा करना चाहते थे। बनवास तो बहाना था। जो बनवास कष्ट के लिए दिया गया वही सब के लिए अमृत हो गया। राजा ने सिंहासन छोड़कर धरती से एकता प्राप्त की इसीलिए राम राजा नहीं सेवक बने। सेवा राज्य से बढ़कर है यही राम के जीवन की सार्थकता है।

माँ, सचमुच सेवा में जो सुख है वह कहीं नहीं। जिसकी सेवा की जाती है वह तो सुखी होता ही है, सेवा करने वाले को भी आत्मसुख मिलता है। सेवा सब को सुख-शांति देती है। माँ, मन यही चाहता है कि राम में मन लगा रहे, सेवा में मन रमा रहे। आशीष दो, सेवा से मन न मोड़ूँ। यह जीवन समर्पित हो सेवा के लिए। माँ, कितना बल मिलता है सेवा की कल्पना मात्र से। समुद्र लाँघना मेरे बूते का नहीं पर सेवा-भाव ने वह आत्म-बल दिया—मुझे लगा नहीं कि समुद्र लाँघ रहा हूँ। यह शक्ति कहाँ से आई मैं अब भी नहीं जान सका। मुझे तो अपना भान ही नहीं रह गया था जब

मैंने संकल्प किया था समुद्र लाँघने का । माँ, क्या यह शक्ति राम ने दी थी । मुझे केवल सीता के खोज की ही धुन थी—माँ लगता है तुम्हीं ने वह अदम्य उत्साह-बल मुझमें भर दिया था, तभी तो मैं तुम्हारे पास पहुँच सका । अपना बल कहाँ ! बल कदाचित् समर्पण में है । इस तथ्य को लोग क्यों नहीं जानते । जब अपने सुख के लिए हम कर्मशील बनते हैं तब वह शक्ति नहीं, वह आत्मसुख नहीं जो अपने से भिन्न की सहायता-सेवा करने में है । वस्तुतः, कोई भिन्न नहीं, कोई अलग नहीं ऐसा मानने पर अपने और पर का भेद मिट जाता है और यही अभेद भाव प्रेरणा का स्रोत बन जाता है । माँ, शक्ति दो कि एक क्षण के लिए भी अपने लिए न सोचूँ—मेरा है ही क्या ! सब उसी का है जिसने दिया है । माँ, मैं भावविभोर हो उठा हूँ, मुझे समाधि का सा सुख मिल रहा है तुम्हारे समीप । माँ, मैं चाहता हूँ यही तन्मयता बनी रहे, यही शक्ति दो माँ !

मेरे हनुमान, शांति-संतुलन-समाधि एकाग्रता में ही है यह ठीक ही कह रहे हो । विक्षेपरहित जीवन ही अखंड जीवन है । हाँ, इसका अर्थ जड़वत् जीना नहीं । कर्म करते हुए शांति का अनुभव करना समाधि कृति है । जो बाह्य रूप से कर्मशील है और आभ्यांतरिक रूप से अनन्दमय वही दिव्य है । पर ऐसी स्थिति सतत साधना से ही सुलभ होती है । सतत अभ्यास करना है कि कठिनाई-संकट में भी संतुलन-समत्व न छूटे, यही जीवन की सफलता है । कर्म के साथ अनेक बन्धन हैं—अनेक आसक्तिजन्य भाव हैं यथा क्रोध, लोभ, अहंकार । कर्म करते हुए इनसे कैसे बचे यही योग है । इसलिए कर्मशील को सदैव जागरूक रहना चाहिए, चेतनता के अभाव में ये विनाशक भाव धर दबोचते हैं । अतः कर्म में ज्ञान की स्थिति अपेक्षित है और यह ज्ञान तभी टिकाऊ होगा जब निष्ठा-सेवा-न्याय की भावना से कोई कर्तव्य-कर्म में जुटे । कर्तव्य वही है जिससे दूसरों की शांति में बाधा न पड़े, जिससे सबका हित हो, जिससे स्वार्थ नहीं परमार्थ की सिद्धि हो । वस्तुतः, परमार्थ ही सच्चर स्वार्थ है । स्वार्थ और परमार्थ का विरोध नहीं यदि जगत् का कल्याण हो । तुमने जिस अभेद भाव की ऊपर चर्चा की है वही मूल है संसृति-सेवा

का । स्वार्थ की पहचान है भेद-भाव । परमार्थ की पहचान है अभेद भाव । सन्त भेद नहीं जानता । राम भेद नहीं जानते । उनके लिए शबरी, सुग्रीव, हनुमान, सीता सब समान हैं । हाँ, सबके साथ सम्यक् कर्तव्य का निर्वाह करना है । जिस प्रकार सूर्य सबको प्रकाशित करता है उसी प्रकार हमें भी सबके भीतर सुख-शांति का प्रकाश फैलाना चाहिए ।

[राम अदृश्य रूप में कहते हैं—]

हनुमान ! तुम ज्ञान, भक्ति, कर्म के समन्वित रूप हो । यही तुम्हारा श्रेयस् रूप है । तुम शक्ति-सौन्दर्य श्रेयस् के साकार स्वरूप हो । तुम्हारा जन्म समाज को इसी समन्वित रूप का बोध कराने के लिए है । प्रत्येक प्राणी अपनी शक्ति को पहचाने यही जीवन का सौन्दर्य है और यही उसका श्रेयस् रूप । शक्ति सब में है । अन्तर है तो यही कि जो निहित शक्ति से तादात्म्य प्राप्त कर लेता है वह असामान्य व्यक्ति हो जाता है और जो हीन भावना से भरा रहता है वह मृतक सदृश जीता है । सीता का सामीप्य शक्ति की समीपता है । राम का सामीप्य शक्ति का सामीप्य है । राम, सीता, हनुमान एक ही हैं । जो शक्ति को पहचानता है वह राम-हनुमान हो जाता है । मेरा धर्म है सबको इसी शक्तिस्रोत से जोड़ना, सबमें वह चेतनता भरना जिससे मनुष्य अपनी छिपी भीतरी असीम शक्ति का साक्षात्कार कर सके । हनुमान, यह तभी संभव है जब मैं सबसे प्रेम करूँ, सबको अपना मानूँ । प्रेम ही वह आकर्षण तत्त्व है जो भीतरी शक्ति को जगाता है, उस शक्ति-अग्नि को प्रज्वलित करता है । घृणा इसका विरोधी है । इसलिए पहला धर्म है सबको प्रेम करना सबको अपना मानना । स्नेह में असीम शक्ति है । वह अंधकार में प्रवेश कर उसे प्रकाशपुञ्ज बना देता है । माँ प्यार से ही बच्चे के लिए शक्ति बनती है । माँ के अभाव में बच्चा नहीं जी सकता । माँ अर्थात् स्नेह, प्यार, मया, दया, सेवा । दुलार ही सारे शुभ-भावनाओं के मूल में है । प्यार बाँटो समाज सुखी होगा । प्यार अर्थात् सबके साथ समान भाव ।

हनुमान, प्यार ही भक्ति है। प्रेम बिना भक्ति नहीं। भक्ति उसी को संभव है जिससे सम्बन्ध जुड़े। भक्ति प्यार की पराकाष्ठा है—प्रेम की गहराई ही भक्ति है। प्रेम भाव है, भक्ति व्यवहार है। प्रेम वही जो ऊँचा उठा सके, जो विचारों में उदारता ला सके, जो संकीर्णता को मिटा सके। प्यार और भक्ति की पहचान है अभेद भाव। जिस प्यार में आसक्ति है, मोह है वह परिणाम में दुःख देता है और जो प्यार, सेवा, त्याग, कल्याण से युक्त होता है वह सदा सुख देनेवाला है। सेवा ही शांति का मूल है। मनुष्य की प्रत्येक श्वास सेवा में बीते यही मानवता की सफलता है। मानव मूल्यों की रक्षा सभी संभव है जब हम प्यार करना सीखें। प्यार एक से भी होता है और अनेक से भी। किसी एक को प्यार करके जब हम अपने को कृतकृत्य मानते हैं तो अनेक से प्यार करके हम परम सुखी हो सकते हैं। एक अनेक का प्रतिनिधित्व करता है इसलिए आरम्भ एक से ही करना पड़ता है। प्रत्येक पिंड ब्रह्मांड है अर्थात् वह समग्र का प्रतीक है। इसीलिए एक में अनेक और अनेक में एक की कल्पना करनी पड़ती है। एक को जाननेवाला सबको जानता है और सबको जानने वाला तो सच्चा तत्त्वज्ञानी ही है। यही अध्यात्म मार्ग है, यही जीवन-धर्म है, यही जीवन का लक्ष्य है। हम दूसरे को प्यार करके ही अपने व्यक्तित्व का विकास करते हैं। मनुष्य हृदय प्रधान है, भाव प्रधान है और भाव का भोजन प्रेम है। प्रेम में जो आकर्षण है वही सुख की कुञ्जी है। आकर्षण के बिना जीवन नीरस है। जीवन को रसमय बनाने के लिए ही आकर्षण का महत्त्व है। नारी-पुरुष में आकर्षण का सर्वोच्च रूप है इसीलिए प्रेम का आदर्श रूप नर-नारी के अभेदत्व में है। प्रेम के सौन्दर्य रूप को पहचानना ही ज्ञान है।

दूसरा सोपान

[हनुमान समुद्र तट पर बँठे उषा का मनोरम दृश्य देखकर मन ही मन कहते हैं—]

यह अनुराग, यह लालिमा, यह अरुणिमा प्रेम का ही तो रूप है। प्रकृति यही संदेश देती है। उषा के आगमन के साथ चिड़ियाँ कलरव करने लगती हैं मानों उन्हें प्रकृति का प्रेम स्पर्श कर रहा हो। उषाकालीन वायु इसीलिए सर्वोत्तम है कि वह उषा के प्रेम के संदेश को बिखेरता है। सर्वत्र प्रेम का प्रकाश फैले यही उषा की सफलता है। उषा नारी है। वस्तुतः प्रेम की सृष्टि के मूल में माँ है, जननी है, बहिन है। माँ को इसीलिए शक्ति कहा जाता है। जीवन में माँ के स्पर्श-आलिंगन का सुख भुलाया नहीं जा सकता। माँ का प्यार-दुलार जिसे नहीं मिला वह सचमुच प्रेम के अमृत रस से वंचित रहा। माँ सेवा पर सेवा करके बड़ा करती है। उसे इसी में सुख मिलता है कि उसकी आँख का तारा कब सूर्य की भाँति प्रकाश-पुञ्ज बनेगा और संसार के अन्धकार-दुःख को भगा सकेगा। उषा, अन्धकार के बाद तुम्हारा आगमन सूचक है कुदिन के बाद सुदिन का, कष्ट के बाद सुख का। उषे, मेरे हृदय में आलोक भर दो, अनुराग भर दो, जिससे मैं पूरी सृष्टि को प्रेम-प्यार से आप्लावित कर दूँ। राम की सीख यही तो है कि प्यार ही जीवन है। प्यार ही मोक्ष है। प्यार ही समानता है। प्यार ही धर्म है। मनुष्य के हृदय की रक्षा प्यार से ही संभव है। उषे, काश मेरे भी पंख होते और तुम्हारी ओर मुँह किए पक्षिगण को भाँति मैं भी उड़ जाता। आलोक में कितना आकर्षण है! यही तो प्रेम का आकर्षण है। प्रेम की धारा माँ के दूध में बहती है, बच्चा स्वतः उस ओर आकृष्ट होता है। गंगा की धारा में

जो आकर्षण है वह प्रेम का ही है। पुष्प के सौन्दर्य में जो आकर्षण है उसी का नाम प्रेम है। इतना आकर्षण होते हुए भी सृष्टि का प्राणी विकर्षण में जीता है ! वैदिक ऋषियों ने कदाचित् तुम्हीं से प्रेम-समानता का मंत्र सीखा : तुम रोज आती हो सम्पूर्ण प्रकाश के साथ ताकि जगती का कोई कोना अन्धकारपूर्ण न रहे, कोई प्राणी आलोक से वंचित न रहे। तुम कदाचित् रोज प्रेम बाँटने का संदेश देने आती हो—तुम बताना चाहती हो कि जीवन को सफलता देने में है, बाँटने में है। समानता का सुख संग्रह में नहीं बाँटने में है। उषा ! तुम्हारी आलोक-राशि अपार है। आलोक को तुम जितना ही बाँटती हो उतना ही प्रकाशमय होता जाता है। जो बाँटता है वह ऊपर तुम्हारी भाँति चढ़ता है। ऊपर उठो, यह संदेश है तुम्हारा सारे संसार को : बाँटो और मानवता के शिखर पर पहुँचो।

उषे, तुम्हारी अरुणिमा वृक्षों के एक एक पल्लव पर पड़ती है और तुम्हारा प्यार पाकर सोते हुए पौधे जग जाते हैं, पुष्प तुम्हारी ओर मुँह कर लेते हैं—वे आनन्द से प्रस्फुटित होने लगते हैं; लगना है विकास के मूल में तुम ही हो। समझता हूँ, आलोकपूर्ण होना ही विकास है। विकास की प्रक्रिया आलोक-अनुराग-प्रेम से ही संभव है।

उषे, तुम्हारे आगमन के साथ ही किसान हल लेकर खेत की ओर चल पड़ता है। तुम कर्म का संदेश देती हो—जागो-उठो, कर्म में जुटो, उन्नति तुम्हारी प्रतीक्षा में है। सोता हुआ पशु उठ खड़ा होता है, सोता हुआ गृहस्थ सचेत हो जाता है—सारा संसार अकर्मण्यता से कर्म की ओर उन्मुख हो जाता है। यही तो रामायण-गीता का संदेश है। कर्म माध्यम है प्रेम के प्रसार का। बीज बोवोगे तभी जगत् को अन्न मिलेगा, अन्न मिलेगा तभी लोग जीवित रहेंगे, स्वस्थ रहेंगे, तभी सेवा कर सकेंगे। हे कर्ममयी उषा, मुझे बल दो, प्रेरित करो कर्म के लिए, कर्मठ बनने के लिए, संसार को कर्मशील बनाने के लिए।

उषा, तुम्हारा संदेश है कि जीवन जियो एक उद्देश्य के साथ—दूसरों

को प्रकाश देने से ही आत्म-प्रकाश का उदय होता है। जिस उत्साह से तुम संसार को प्रदीप्त करने के लिए आगे बढ़ती हो वही उत्साह मनुष्य-मात्र में हो तब कहीं दुःख न रहे—कहीं अन्धकार न रहे। पशु और मानव में यही भेद है कि मनुष्य जीवन जीता है किसी ध्येय के साथ। जिसके जीवन में कोई लक्ष्य नहीं वह पशुवत् है। संसार के महान् कार्य उन्होंने किए हैं जिनमें कुछ करने की लगन रही है। मनुष्य प्रतिदिन उषा का दर्शन करता है पर उससे प्रेरणा नहीं लेता संसार को तेजमय बनाने का। जीवन की कला तुम से सीखनी चाहिए। उषा, तू सारे जगत् को जीवन देती हो, निरन्तर देती हो—अनादिकाल से देती आ रही हो और उसके बदले में तुमने कभी कुछ नहीं चाहा, यही निःस्वार्थ सेवा मनुष्य के जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। उषा, तुम माँ सदृश प्रत्येक को अपने किरण से चूमती हो—देखो न तुम्हारे चुंबन से ही नव पल्लव लालिमा युक्त हो रहे हैं—उनका आह्लाद फूटा पड़ रहा है। तुम्हारा स्पर्श पाते ही कुल-कुल कर पक्षिशिशु जाग जाते हैं, पुष्प खिल उठते हैं, दिशाएँ अनुरागरंजित हो उठती हैं, मुर्ग बाँग देने लगते हैं, कमल अपनी पंखुड़ियाँ खोलकर तुम्हारी किरण राशि को अपने में भर लेना चाहता है। यदि तुम न हो तो कमल खिले ही नहीं। कमल तुम्हारा प्रेमी है—वह तुम्हें अपनी हृदय-गुफा में बाँधकर रखना चाहता है; तुम्हारे अभाव में वह म्लान हो जाता है। जीवन उसी का धन्य है जिसका कोई प्रेमी हो—जिसको चाहनेवाले हों। उषे, संसार के समस्त कवियों ने तुम्हारे श्री का गौरव गाया है—वैदिककाल से आज तक तुम्हारी रमणीयता का चित्रण किया जाता रहा है। तुम धन्य हो। जीवन उसी का सफल है जिसे लोग सतत स्मरण करते रहें।

ओ नीले समुद्र ! कितने अधीर हो तुम उषा को पाने के लिए, तुम भी ऊँची-ऊँची लहरें भर रहे हो—तुम प्यार से व्याकुल-आतुर हो। अपनी भुजायें फैलाए उषा रमणी के आलिंगन के लिए विह्वल हो। सारे रतन, सारी मणियाँ उषा के श्रृंगार के लिए तट की ओर फँक रही हो। तुम्हारी यह सतत चेष्टा प्रेरणा देती है दृढ़ता-वत्परता और निरन्तर कर्मशीलता

का । तुम्हारा हृदय जल रहा है अपने इष्ट को पाने के लिए—यही आतुरता होती है भक्त की भगवान को पाने के लिए । जीवन में जो आतुर नहीं हुआ वह नहीं जानता सुख भाववेग का । उषा की लालिमा को तुमने हृदय में धारण किया है उसी प्रकार जिस प्रकार मेरे हृदय में राम का अनुराग भरा है । जिसका हृदय भरा है प्रेम-प्यार-भक्ति से वही परम सुख की अनुभूति कर सकता है । प्रेम ही शक्ति है । भगवान के प्रेम की शक्ति से ही मैं तुम्हें लाँघकर लंका तट पर आ गया । मनुष्य के शरीर का बल नहीं उसकी आत्मा का बल ही असंभव कार्य को संभव बनाने का बल देता है । प्रेम में कष्ट कहां ? प्रेम में कष्ट ही सुख है । सुख शारीरिक विश्राम-आराम नहीं, सुख, सेवा के लिए बलिदान होने में है । हे सागर ! सुन्दर अरुण नील ! तुम अपार हो, अथाह हो, तुम अपरम्पार हो, तुम रत्नाकर हो—यह सब होते हुए भी तुम अधीर हो प्यार के लिए । प्यार बिना सूना है जीवन । सचमुच संसार को हे सागर ! तुम यही संदेश दे रही हो । तुम्हारा हाहाकार, तुम्हारा फेनिल उच्छ्वास नित्य मिलन के लिए ही है । यह सतत वियोग जीने की कला सिखलाता है । तुम्हारे तट पर आकर मुझे सच्चा आत्मबोध हुआ—गम्भीर होते हुए भी तुम चंचल हो, अथाह होते हुए भी तुम अधीर हो, शांत होते हुए भी अशान्त हो—सारी नदियों का रसपान करने के बाद भी तुम अतृप्त हो उस परमसुख को पाने के लिए जो भगवत् कृपा से ही मिलता है । अशांति और शान्ति, वियोग और मिलन, दुःख और आनन्द इस द्वन्द्व का नाम ही तो जीवन है । एक का अभाव ही दूसरे का भाव है—एक में दूसरा समाया हुआ है जिस प्रकार अंधकार में प्रकाश । उषा अंधकार के बाद ही अरुण को पाती है और भास्कर भी अंधकार के अनन्तर ही ऊषा को प्राप्त करता है । अतः अंधकार-प्रकाश का युग्म ही सत्य है—न केवल अंधकार और न केवल प्रकाश । इसी युग्म का प्रतीक अर्द्धनारी-श्वर में है—पुरुष-नारी का युग्म । शिव-पवित्री का युग्म । सीता में राम और राम में सीता समाए हुए हैं । मानव में मस्तिष्क पुरुष प्रधान है और हृदय नारी प्रधान । एक कठोर है दूसरा मृदु । एक तर्क-संयम

अनुशासन से जीता है दूसरा समर्पण-सेवा-प्यार से। राम से सीता का बिछोह मस्तिष्क का हृदय से बिछोह है। दोनों का समन्वय-संतुलन ही जीवन का साफल्य है। राम कहीं, सीता कहीं यही अशान्ति का मूल है। विचार और भाव की एकता, चिंतन और क्रिया की एकता वांछित है पूर्ण मानव के लिए। राम द्वारा सीता की खोज अर्थात् हृदय की खोज। सागर, तुम सहायक बनो इस महामिलन में। सागर, तुम तो भेद मिटानेवाले हो, सबको अभेद का संदेश देते हो। तुम्हारे बिना नदी का क्या अस्तित्व है और नदियों के बिना तुम्हारा क्या जीवन है! सागर, तुम सेतु का काम करो राम सीता के अद्वयत्व में, उनके मिलन में ही तुम्हारी सार्थकता है।

सागर! तुम्हें पता है इस सिंहल दीप में, जिसकी तुम रक्षा कर रहे हो, सीता को लंकेश हर लाया है। तुमने रत्नों से इस दीप को पाट दिया है अब उस रत्न भंडार के मद में दशमुख पापाचार कर रहा है। क्या रतन-पदारथ के संग्रह का परिणाम यही है? क्या इसका अन्त पतन ही है? रावण पंडित है पर आचरण में वह छल, दंभ से युक्त है। लगता है शास्त्रज्ञान जीवन जीने की कला नहीं बता पाता है। पंडित-बहुश्रुत होना क्या बाधक है आचरण की पवित्रता में? पंडिताई का भी घमंड होता है। आचरण का सम्बन्ध हृदय की निर्मलता से है शास्त्र-पारायण से नहीं। हृदय कलिमायुक्त है तो उसे भक्ति से ही निर्मल किया जा सकता है। हृदय गुहा में बैठे अनन्त सत्य का साक्षात्कार ही जीवन को उदात्त बना सकता है। पंडित होना संत होना नहीं है। लंका में पंडित-शास्त्रज्ञ की कमी नहीं पर धर्म ही राक्षसत्व का विनाश कर सकता है जैसे सूर्य अंधकार का। सागर अपनी गोद में स्थित इस सिंहलदीप को प्यार-सेवा का संदेश दो, धन तो तुमने अपार दे दिया है। मैं सीता की मुक्ति के लिए ही आया हूँ तुम सहयोग दो। मैं सोने की लंका को भस्म करूँगा, तुम उस अग्नि को बुझाना नहीं बस यही प्रार्थना है तुमसे। रावण के अहंकार को भस्म होने दो तभी विभीषण का—राम के सेवक का—राज्य स्थापित होगा। अनाचार-अत्याचार को प्रश्रय न दो महासागर! तुम्हारी गरिमा पवित्रता की रक्षा में है। मैं जानता हूँ तुम भी दुखी

हो इस रावण-राज्य से तो आओ हम सब संयुक्त रूप से इसका विनाश करें। अधर्म का नाश और धर्म की स्थापना यही श्रेयस् है। सत्य की रक्षा ही पावक, जल, आकाश का काम है। जल और अग्नि का परस्पर विरोध है पर आज दोनों एक दूसरे के मित्र बनेंगे—जलती हुई लंका की रक्षा जल नहीं करेगा, वह उसमें सहायक होगा। पाप का अंत जलन में हो और पुण्य का शांति में। संसार में समत्व कैसे सम्भव है जब सारा रत्न एक जगह पुञ्जीभूत हो जाय ! समता तभी सम्भव है जब सुख के साधनों का वितरण हो। अधिक संग्रह लोभ का कारण है और लोभ असमानता का मूल है। असमानता-भेद को मिटाना हे विशाल सागर ! तुम्हारा उत्तरदायित्व है। तुम्हारे तट पर बसे कितने ही प्राणी भूख से छटपटा रहे हैं क्या तुम उनको देख नहीं रहे हो ? आखिर यह क्यों ? इन्हें भी रंक से राजा बनने का अवसर दो। संपत्ति समाज की हो व्यक्ति की नहीं, कुछ ऐसी क्रांति लाओ सागर ! तभी तुम्हारी सार्थकता है।

हे नारिकेल ! इस समुद्र तट पर स्थित तुम इतने सरस हो, इतने निर्मल हो यह भी ईश्वर की लीला है। तुम्हारे भीतर दुग्ध का भंडार है। तुम भीतर से कितने उज्ज्वल हो, निर्मल हो ! क्या यह सीख तुम इस दीप में बसे रावण को नहीं देते हो ? पर रावण तुमसे सीख क्यों लेने लगे ? वह तो रत्नों का स्वामी है। निर्मलता धनी के पास सम्भव ही नहीं। जहाँ संग्रह है वहाँ शुद्धता कहाँ ! संग्रह के मूल में शोषण है। देखो न संग्रह का लोभी रावण जम्बूदीप से सीता लक्ष्मी को हर लाया। क्या कमी थी उसे पर संग्रह के मद में पाप ही जनमता है। नारियल ! ऊपर से इतने कठोर और भीतर से इतने मृदु, यही तो जीवन की कला है—गहर जीवन में अनुशासन और भीतर भक्ति की धारा, सेवा की लहर। सत्य, आचरण की अपेक्षा रखता है। सत्य का मुँह स्वर्ण से ढका रहता है। जो लोभी है, लालची है, संग्रही है, वह स्वर्ण को ही देखता है और जो योगी है, ज्ञानी है, भक्त है वह सत्य को। यही दृष्टि-भेद दर्शन के मूल में है। हमारे राम ऊपर से धनुर्धारी, वज्रसदृश संहारक और भीतर से मृदु, निर्मल, सेवी। उन्हें पशु-पक्षी सबसे प्रेम है। द्वेष

है तो संग्रही से । वे राज्य छोड़कर वितरण के लिए निकल पड़े हैं । सागर, तुम सहयोग दो इस क्रांति में, इस नवजागरण में । जम्बूद्वीप और सिंहलद्वीप को समान भाव से समुन्नत करो सागर ! इनको मिलाने में तुम सेतु बनो । जीवन की सार्थकता सेतु बनने में है । स्वार्थ और परमार्थ विरोधी हैं । पर परमार्थ को ही यदि स्वार्थ समझ लिया जाय तो जीवन का रूपांतर हो जाय । यह जीवनदृष्टि दो सागर समस्त मानव मात्र को । सत्य ही स्वार्थ है, परमार्थ ही सबकी उत्थिति में समर्थ है । वस्तुतः, दूसरों की सेवा अपनी सेवा है । दूसरों के उत्थान में ही सुख की अनुभूति ही यही जीवन का धर्म है । हमारे राम की यही सीख है । वे अयोध्या छोड़कर इसी लक्ष्य की पूर्ति में पदयात्रा कर रहे हैं । उन्होंने सीता को गवाँ दिया पर अपने रास्ते को छोड़ा नहीं । अब वे समूची लंका में क्रांति का बिगुल बजावेंगे । यहाँ राअसत्त्व का विनाश कर रामत्व की स्थापना करेंगे—संग्रह की जगह वितरण, अन्याय की जगह न्याय, पाण्डित्य की जगह प्रेम, स्वार्थ की जगह सेवा, भेद की जगह अभेद । सबको जीने का अधिकार है किसी एक को नहीं । देखो न, मंदोदरी की कितनी उपेक्षा है यहाँ ! नारी को कोई अधिकार नहीं । पति मनमानी करता है आतंक के बल पर । यह अब नहीं चलेगा । सागर, क्रांति की लहर लंका तक पहुँचनेवाली है । राम आने वाले हैं । सागर, तुम सेतु बनो ।

तीसरा सोपान

अरे बिभीषण, तुम यहाँ ! अनासक्त भाव से किसका ध्यान कर रहे हो ! स्वर्णदीप सिंहलदीप में रहकर तुम तटस्थ ! रावण के भाई होकर तुम इतने विरक्त । समझा रावण ने अधिकार कर रखा है सारे कोष पर, सारी सेना पर, सारी सम्पत्ति पर । उसने तुम्हारे हिस्से को अपना रखा है, तुम्हें भोजन भी नहीं और वह रात दिन विषय की उपासना में लीन । बिभीषण चुप मत बैठो, क्रांति करो । पृथिवी पर यह अन्याय, यह असमानता न रहे इस लक्ष्य की पूर्ति में सहयोग दो । मैं राम दूत हूँ, राम की सेवा में तुम्हारे ऐसे उपेक्षित ही होंगे । राम निर्बल के बल हैं, वे सारे निर्बलों की सेना से ऐसी क्रांति में तत्पर हैं कि धरती को शांति मिले । अत्याचार-अनाचार का बोझ धरती को असह्य है । राम हमारी तुम्हारी ही तरह हैं पर वे कर्मठ हैं, दूरदर्शी हैं, वे क्रांति के अग्रणी हैं । वे इसी लक्ष्य से निकले हैं कि संसार में जहाँ भेद, घृणा, उपेक्षा का राज्य है उसे मिटाना होगा और रामराज्य की स्थापना करनी होगी । यह समाजवाद विद्रोह से ही सम्भव है, बिभीषण, विद्रोह बिना क्रांति सम्भव नहीं । उठो, कर्मयोगी बनो, समय आ गया है प्रभात दूर नहीं है ।

बिभीषण तुम मौन क्यों हो ? क्या सोच रहे हो, नारिकेल के नीचे किसके ध्यान में लीन हो—सत्य का साक्षात्कार केवल ध्यान से सम्भव नहीं । ध्यान को कर्म से जोड़कर उसे सार्थक बनाना होगा । कर्म के बिना ज्ञान-ध्यान व्यर्थ है । पाण्डित्य का फल तो देख रहा हो, सम्पत्ति-संग्रह का विनाशक रूप तुम्हारे सामने है । रावण ने क्या कम तप किया है पर उस तप से क्या संसार सुखी होगा—अपने सुख ऐश्वर्य के लिए किया गया तप शोषण

के आधार पर टिकता है। बिना शोषण संग्रह सम्भव नहीं, बिभीषण ! क्या ध्यानमात्र से शोषण-असमानता समाप्त होंगे। आँखें खोलो, कर्म को जीवन का अंग बनाओ, राम की सेना में भरती हो और शोषण के विरोध में जिहाद का नारा बुलन्द करो। ईश्वर समानता चाहता है, उसने भेद नहीं उपजाया। भेद हमारा बनाया हुआ है। भेद ईश्वर-उपासना का विरोधी है, इसे मिटाना होगा। बिभीषण इस नारिकेल के नीचे वचनबद्ध हो कि राम का सहयोगी बनूँगा, अंधकार को मिटाकर प्रकाश का वितरण करूँगा। अन्याय की जगह न्याय को आसीन करूँगा।

हे क्रांति दूत ! हनुमान, मैंने तुम्हारा नाम सुन रखा है, आज तुम्हारा दर्शन भी हो गया, तुम्हीं संकटमोचन कहे जाते हो न ! तुम अतुलित बलधाम हो। ज्ञानियों में तुम्हारा नाम अग्रगण्य है। रामदूत के रूप में आज तुम मेरे सामने हो यह मेरे उज्ज्वल भविष्य का सूचक है। तुम तो राम के साथ रहते हो बताओ क्या वे वही राम हैं जो निरङ्कार, अव्यक्त, अदृश्य, जगत्-कर्ता हैं ? वे इस भूमि पर कैसे ? जो अव्यक्त है वह व्यक्त कैसे ? जो अनादि है वह शरीरधारी कैसे ? मैं तो उसी ब्रह्म का ध्यान करता हूँ जो नित्य एक रस, अनित्य है। यदि भगवान है तो उसका अवतार कैसे ? अवतार हुआ तो—वह नाशवान् होगा। ईश्वर और उसका विनाश, यह कल्पना के बाहर है। ब्रह्म समाधि का विषय है चर्चा का नहीं, वह निर्लित है, वह न न्याय है और न अन्याय। वह न पाप है और न पुण्य, वह न प्रकाश है और न अंधकार। वह है पर क्या है कोई नहीं जानता। वह शुद्ध विश्वास का विषय है—हम सबके भीतर है, चराचर में व्याप्त है पर उसे कोई देख-सुन नहीं सकता। उस अगोचर को आप राम बताते हैं। वह पृथ्वी का भार उतारने आया है ऐसा कैसे ? पृथ्वी के भार से उसका क्या प्रयोजन। यह तो प्रकृति की देन है, ईश्वर तो अनासक्त है—अर्निलित है।

हनुमान, बताओ न, चुप क्यों हो ? इस एकांत में तुम मणि की भाँति प्रकाशमान् कौन हो ! तुम्हारा बल, विक्रम तुम्हारी वाणी से प्रत्यक्ष हो रहा है। क्या यह राम के सामीप्य का फल है ? यह अद्वितीय आलोक, यह सौर्य

यह परमार्थ-प्रवृत्ति; यह उदार दृष्टि अन्यत्र मैंने नहीं देखी। लंका सोने की है पर यह आलोक कहाँ ? यह रत्नों के भंडार से भरी है पर आज ऐसा नर-रत्न यहाँ कहाँ ? हनुमान् तुम पूर्ण मानव हो या दैव ? तुम क्या हो ? तुम राजा नहीं, तुम्हारे सर पर राजमुकुट नहीं पर तुम्हारी वाणी में राजा की वाणी से अधिक ओज है। तुम्हारे एक-एक स्वर में जीवन संगीत है। यह श्रेयस् भाव इस धरती पर कहाँ सुलभ है, तुम क्या इसी आलोक को बाँटने के लिए आए हो। सीता धन्य है जिसके कारण ऐसे दूत का साक्षात्कार हो सका है। लगता है माँ सीता की पवित्रता ने ही तुम्हें अवतार रूप में यहाँ बुलाया है। वह दिव्य ज्योति, नारी का वह मंगल रूप पुराणों की सावित्री से कहीं दिव्य है। सचमुच क्रांति होने वाली है अन्यथा ये सहायक उपकरण क्यों ? हनुमान् तुम्हारे दर्शनमात्र से चित्त स्थिर हो गया अब तो एक ही जिज्ञासा है कि प्रकाश का स्रोत कहाँ है ? वह राम कहाँ है ? वह क्रांतिकारी भगवान् कहाँ है जिसका सन्देश तुम दे रहे हो।

[मुसकुराते हुए हनुमान]

दिभीषण, राम की अनुभूतिमात्र रामत्व देती है। मनुष्य राम ही है। राम कहीं और नहीं। अपनी शक्ति को पहचानना भीतर के स्रोत से एकता प्राप्त करना ही रामानुभूति है। हमारे राम हमारे भीतर-बाहर सर्वत्र हैं। बस यही अनुभव सारे बल का, आलोक का, पुरुषार्थ का कारण है। आप आनन्द-शीर्य-शान्ति सेवा की बात सोचें तो सारे निर्माणकारी भाव स्वयं एकत्र हो जाते हैं। इसमें प्रयास की अपेक्षा नहीं। बहुत ही सहज रास्ता है अनुभव का। ध्यान सहायक है पर अनुभव ही गुरु है सारे तत्त्वज्ञान का। अपनी विचार-धारा को शक्ति की ओर उन्मुख करें—आनन्द की ओर मोड़ें, बस सारे कार्य सुखद हो जायेंगे। कोई कार्य दुःखद नहीं, कोई परिस्थिति भयावह नहीं। हाँ, अनुभव की डोर टूटने न पावे—प्रत्येक श्वास के साथ यह अनुभूति जुटी हो। जीवन का क्षण-क्षण उसकी एकता से युक्त हो।

भाई बिभीषण, जिस ब्रह्म की बात आप करते हैं वह है पर, उसे सर्वत्र समझें—चित्तन को व्यवहार में लावें। जिन राम का मैं दूत है वे सदा मेरे साथ हैं, मेरे पास हैं, मेरे भीतर हैं। वे शरीरधारी हैं। जब ब्रह्म को आप सर्वशक्तिसम्पन्न मानते हैं तब उसे शरीर धारण करने में अक्षम क्यों मानें ? शरीर-धारण करना दोष नहीं—शरीर माध्यम है कर्म का, सत्य का, आलोक का। माध्यम बुरा है ऐसी कल्पना व्यर्थ है। सत्य माध्यम चाहता है प्रकट होने के लिए। शून्य में कोई तत्त्व नहीं। जिस प्रकार श्वास माध्यम है जीवन का उसी प्रकार देह माध्यम है आत्मा का। देह से घृणा नहीं। साधन-साध्य का युग्म अन्विष्ट है। वस्तुतः, साधन, साध्य से अधिक महत्त्व रखता है, वही साध्य तक पहुँचाता है। साधन की पवित्रता ही साध्य बन जाती है जिस प्रकार भाव की परिणति रस में हो जाती है। सेवा साधन है साधन को प्राप्त करने का। सेवा करते करते सेवक सेवामय हो जाता है। उसे केवल सेवा का ध्यान रह जाता है और इसी सेवा में वह परमानन्द का अनुभव करता है यही सिद्धि है। जिस प्रकार द्रव्य और रस में कौन श्रेष्ठ है कहना दुष्कर है उसी प्रकार माध्यम और लक्ष्य में कौन महत्वपूर्ण है कहना कठिन है। द्रव्य बिना रस नहीं और रस तो प्राण ही है द्रव्य का।

बिभीषण, मैं राम का दूत हूँ क्रान्ति के लिए आया हूँ। लंका में सीता का आना लंका में क्रान्ति का आना है। स्वार्थ-शोषण के बीच सीता की पावन ज्योति जगमगा रही है वही क्रान्ति लायेगी। विध्वंसात्मक विचारों-क्रियाओं की समाप्ति होगी और उनका स्थान लेंगी निर्माणात्मक क्रियायें। घृणा-द्वेष-लोभ पतन का मार्ग है। इनके स्थान पर प्रेम, सद्भाव, ममता को अपनाना होगा तभी मानवता की रक्षा सम्भव है।

गुरुवर हनुमान, मुझे मार्ग बतलाओ जिस पर मुझे चलना है। मैं भी क्रान्ति सेना में, राम की सेना में, पवित्रता की सेना में, मानवता की सेना में भरती होना चाहता हूँ। लंका भले ही सोने की हो पर यहाँ शोषण का ही राज्य है—सर्वत्र रावण का आतंक। प्रजा की पुकार सुननेवाला कोई

नहीं। सत्य का प्रकाश तो यहाँ बुझ चुका है सर्वत्र झूठ-फरेब-कुटिलता। सत्य का साथ न देने वाले को निष्कासित कर दिया जाता है। यहाँ मनुष्यता को लात मारकर भगा दिया जाता है। रावण के सलाहकर मंत्री वही हैं जो मुंहदेखी कहते हैं, जो अन्याय-असत्य को जानते हुए भी उसकी हाँ में हाँ मिलाने हैं। परनारी का हरण सब पापों का मूल है। मैंने और मन्दोदरी दोनों ने ही इस कर्म का विरोध किया पर रावण किसकी सुनता है। नारी, किसी नारी का अपहरण नहीं देख सकती पर विवश है उसे देखने के लिए। नारी जाति के प्रति रावण का यह कर्म अत्यन्त कुत्सित है। नारी का अपमान भारतीय संस्कृति में नहीं। मन्दोदरी रावण के इस कृत्य में लंका का विनाश देख रही है पर अकेले क्या कर सकती है? रावण मद में चूर है उसे अन्याय-अनाचार में ही सुख मिलता है—उसे किसी की परवाह नहीं।

बिभीषण, अकेले ही सत्य के मार्ग चलना होता है। सत्य का पथिक किसी साथी के लिए रुकता नहीं। वह जीवन को समर्पित कर देता है सत्य की रक्षा के लिए। उसका धर्म सत्याग्रह है। उसे धर्म का मोह होता है प्राण का नहीं। जब तक प्राण का मोह है तब तक सत्य के मार्ग पर नहीं चला जा सकता। निर्भयता पहली शर्त है सत्यान्वेषी के लिए। संत बनना है राक्षसत्व के विरोध में, तभी अन्धकार में, प्रकाश की ज्योति चमकेगी। बिभीषण, अन्धकार के बाद सुप्रभात निश्चित है। रावण का विनाश निकट है। उसके कर्म ही उस नष्ट करने में सहायक हो रहे हैं। पाप का घड़ा भर चुका है। परिवर्तन प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है। लंका में क्रान्ति की लहर पहुँच चुकी है सीता उसी की प्रतीक है। लंका की नियति में बदलाव आ चुका है। विनाशचक्र घूम चुका है और नव उन्मेषकारी शक्तियाँ-विचारों को अब लंका में स्थान मिलेगा। रावण प्रतीक है तमस का, अन्धकार का, अनाचार का, विनाशात्मक विचारों का। उसकी समाप्ति सुनिश्चित है। और उसका स्थान लेगी निर्माणात्मक विचारधारा। प्रजा की आह बहुत समय तक नहीं दबाई जा सकती—यही क्रान्ति के मूल में

है। अतः, उठो बिभीषण सत्य के प्रचार-प्रसार में जुट जाओ। अकेला एक व्यक्ति ही क्रान्ति लाता है पूरा समाज नहीं। सामान्यतः लोग पिछलग्नु होते हैं अन्धे भेड़ की तरह। इसलिए व्यक्ति का धर्म है कि वह लोगों में चेतना की लौ जगावे—अन्धकार और प्रकाश का अन्तर समझावे। उनमें विवेक उत्पन्न करे। उनके हित और अनहित की बात को स्पष्ट करे। शोषण-अन्याय से किसी का भी हित नहीं—न व्यक्ति का और न समष्टि का। जो कुमार्ग पर चलता है उसका नाश तो है ही साथ ही वह अपने साथियों को भी ले डूबता है। पाप का बोझ नाव को सह्य नहीं, पृथ्वी को सह्य नहीं, इंसान को सह्य नहीं। उसे तो मिटाना ही है। इसे मिटाने के लिए मनुष्य रूप में भगवान् साकार होते हैं। जो व्यक्ति क्रान्ति का अग्रदूत होता है वही भगवान है। भगवान का अदृश्य भाव अथवा उनकी अदृश्य शक्ति ही उस व्यक्ति में, उस महामानव में अवतरित होती है। शक्ति अदृश्य-अरूप-निरंकार तो होती ही है। उस शक्ति का नामकरण सम्भव नहीं इसीलिए उसे ब्रह्म, ईश्वर कहते हैं। ब्रह्म शक्ति है, आलोक है, जो अन्धकार का विनाश करता है। ब्रह्म की यही परिभाषा है। जब हमारे विचार सत्य की ओर उन्मुख होते हैं तब हम ब्रह्ममय होते हैं।

हे महाबली, महाज्ञानी हनुमान ! आप की उपस्थिति मात्र हमें शक्ति देती है, निर्भय बनाती है—प्रेरणा देती है सत्य पर चलने के लिए। आप के आलोक के सम्मुख लंका के रतनों का प्रकाश फीका है। मुझे भी मार्ग बतलाइए जिससे राम को सतत स्मरण रख सकूँ, सत्य को भूल न सकूँ, लक्ष्य के लिए सतत श्रम कर सकूँ। आज से, अब से, मैं राम का हो गया। मेरे मन में एक आलोक का संचार हो रहा है, मैं अपने को मुक्त मान रहा हूँ। मैं समझ रहा हूँ आनंद, भोग में नहीं सेवा में है। मैं राम के काम आ सकूँ यही वर मुझे दें। मैं राम की शक्ति लंकावासियों को बतलाऊँगा और राम-मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करूँगा। इस सन्मार्ग से व्यक्ति और समष्टि दोनों का कल्याण होगा। लंका पतन से बच जायगी। मैं अब वीरागी नहीं कर्मयोगी बनूँगा। जो राम कर्म

की प्रतिमूर्ति हैं, जो राम अयोध्या का राज्य छोड़कर जन-जन की सेवा के लिए पदयात्रा कर रहे हैं, जो राम सत्यनिष्ठ हैं जो राम दलित वर्ग के आश्रयदाता हैं, जो राम मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करते, जो उदारता-करुणा के रूप हैं उन्हीं का मैं दासानुदास हूँ। मुझे गुरुवर, शरण में लीजिए और रामत्व से भरपूर कीजिए।

बिभीषण, प्रत्येक में एक ही ज्योति है, जो मुझमें है वही तुममें बस उस ज्योति के पहचानने जानने की बात है। कोई किसी का गुरु नहीं हर एक अपना गुरु स्वयं है। अपने चेतने से ही चेतनता आती है। चेतनता भीतर की वस्तु है, अनुभव की वस्तु है? हां, सत्संग सहायक है। जीवन में थोड़े अवसर ऐसे आते हैं जब हमें ऊपर उठने का सौभाग्य मिलता है। वे अमूल्य क्षण पकड़ना ही पुरुषार्थ है। राम हमारी ज्योति का हमें बोध कराते है। हमारे भीतर से भय को निकालते हैं और हमें सत्य पर चलने के लिए सतत प्रेरित करते हैं। हम सब वही करें जो राम करते हैं यही उनकी भक्ति है, यही मुक्ति है, यही तत्त्वज्ञान है। एक दीप अनेक दीपों को जला सकता है इस बात को गाँठ बाँधकर रखना चाहिए। मनुष्य किसी की प्रतीक्षा किए बिना अपनी ओर से दूसरों को प्रकाश दे—दूसरों को ऊपर उठने को प्रेरित करें बस जीवन सफल हो गया। सत्कर्म करना हमारा धर्म है फल देना ईश्वर के हाथ है। कोई भी बीज निष्फल नहीं—कोई भी कर्म बेकार नहीं यह सिद्धान्त मानकर प्रत्येक क्षण को सत्कर्म में लगावे। यही पूजा है, यही भक्ति है। ज्ञान-भक्ति-कर्म में भेद नहीं केवल नाम का अन्तर है।

मन्दोदरी कहाँ है? बिभीषण! सुना है वह किसी मन्दिर में अनासक्त भाव से भगवद् भक्ति में लीन है। रावण के कुकर्म से वह दुःखी है और ईश्वर से प्रार्थना कर रही है कि वे रावण को सद्बुद्धि दें। वह बार-बार रावण को नारी के अपहरण के पाप का भय दिखाती है पर रावण अहंकार में पाप-मुष्य की परवाह ही नहीं कर रहा है। मन्दोदरी ऐसी सत्याग्रही स्त्री ही वस्तुतः रावण की रक्षा कर रही है। नारी की पवित्रता का बल सर्व

श्रेष्ठ है। मन्दोदरी सचमुच कल्याणी है पर मतिभ्रष्ट रावण उस प्रकाश को नहीं पहचान पा रहा है। विभीषण, रावण के विनाश के यही लक्षण है। जो अपने भाई-बन्धु, अपनी पत्नी अपनी प्रजा का अवहेलना करेगा उसे उसका दण्ड मिलेगा ही। मनुष्य की सार्थकता स्नेह बाँटने में है घृणा में नहीं। बड़ा से बड़ा साम्राज्यवादी काल से बच नहीं सकता, मृत्यु सब को समान रूप से निगलती है इसलिए धर्म को छोड़ना और सत्य से विमुख होकर रहना मूर्खता है। चेतनता को जीवन का अंग बना लेना चाहिए। रावण को यह बोध होगा पर राम के बाणों से त्रस्त होने पर।

विभीषण, देखो वे राम हैं—अदृश्य हैं पर साकार भी हैं आकाश की ओर देखो वह अद्भुत आलोक ! वही आलोक हम सब का मार्ग दर्शक है, वही हमारा ज्ञान है। वही चेतनता है। सदा उस आलोक में रहें यही अभ्यास करना होगा। मन में एक क्षण के लिए भी अंधकार का, आलस्य का, अकर्मण्यता का भाव न हो तो हम स्वतः आलोकपूर्ण हो जायेंगे। प्रयत्न करना होगा। आत्म-चेतना जगानी होगी। सत्य पर चलने से ही सत्य का आलोक प्राप्त होगा। जो सत्य का मार्ग है वही लक्ष्य है—मार्ग ही लक्ष्य का बोधक है। यह आलोक सब को मिले यही हमें करना है। कोई न वंचित रहे। राम सब के लिए सुलभ हों यही कर्तव्य-कर्म हमें करना है। संत का यही उद्देश्य है। संत सब को समान मानता है, सबको समान प्रकाश देता है, सबकी समता की सीख देता है। संत शोषण का विरोधी है। संत अन्याय के विरोध में आवाज उठाता है। राम ने राज्य और बनवास में भेद नहीं माना। उन्हें जनताजनार्दन की सेवा करनी थी। इसका अवसर जनता के बीच में रहकर ही था; जनता में बिना घुले मिले उनके कण्ठों को कैसे समझा जा सकता है ! इसलिए संत वही है जो दूसरों के सुख-दुःख में सम्मिलित हो। उठो, विभीषण, क्रान्ति के लिए पद-यात्रा आरम्भ कर दो—स्वतन्त्रता का, सच्चाई का, सेवा का, रामत्व का मंत्र फूँको—जनजन में जागरण हो, ऐसा करो।

[मन्दोदरी के पास विभीषण-हनुमान]

मन्दोदरी, देखो सामने रामदूत हनुमान खड़े हैं। जिस सत्य-न्याय-धर्म के लिए तुम संघर्ष कर रही हो उसी क्रान्ति के लिए हनुमान लंका आए हैं। राम के प्रताप से ये समुद्र लांघ गए—ये अनुल बलशाली है, परमपराक्रमी हैं और हैं संत। तुम्हारी कुटिया में स्वयं पधारें और तुमसे मिलने के लिए आतुर थे। ये जन-जन से सम्पर्क कर राम का संदेश—सत्य-धर्म का संदेश प्रसारित करना चाहते हैं। सीता शक्ति हैं। उस शक्ति का सम्बन्ध राम से है। राम और शक्ति में तादात्म्य है। सीता का आगमन ही शक्ति की अवतारणा है। सीता के सम्पर्क में ही हम सब की चेतनता जगी और अब तो क्रान्तिदूत हनुमान भी उपस्थित हैं। इन्हें राम ही समझो। संत भगवान का ही रूप है। इन्होंने जो तत्त्वज्ञान दिया उसे मेरी चेतनता जग उठी। मैंने अनुभव किया कि तटस्थ होकर बैठना श्रेयस्कर नहीं। सत्य-धर्म-आचरण की श्रेष्ठता के लिए सब में चेतनता जगानी होगी—भक्ति के साथ कर्म को समन्वित करना होगा। अकर्मण्यता से पाप को प्रश्रय मिलेगा। अन्याय का विरोध सक्रिय होने पर ही संभव है। रावण ने मेरे साथ, तुम्हारे साथ, जनता के साथ नारी-हरण का विश्वासघात किया है। लंका पाप को प्रश्रय देकर रसातल चली जायगी। लंका को बचाने के लिए धर्म का आश्रय लेना होगा अधर्म का नहीं। हमारे राष्ट्र का नाम कलंकित न हो ऐसा कुछ करना होगा। लंका के आतंकवाद को समाप्त कर जन-जन को स्वतंत्र करना होगा। विचारों की स्वतन्त्रता राष्ट्र उत्थान के लिए अनिवार्य है। रावण के भय से उसे अन्याय से कोई विमुख नहीं कर सका है। भय-आतंक पतन के मार्ग हैं। जनता की वाणी को महत्त्व न दिया जायगा तो राष्ट्र की एकता समाप्त हो जायगी। राम का यही संदेश है। हनुमान इसी चेतनता का प्रसार करने आए हैं। मन्दोदरी, इस क्रान्ति में हम सब को एक जुट होकर काम करना है। लंका रावण की नहीं, जनता की है इसलिए जनता पर जिम्मेदारी है उसकी रक्षा की, उसकी उन्नति की। हनुमान ने हमें सत्य का मार्ग दिखलाया, उस आलोक से परिचित कराया जो ब्रह्म है, सत्य है। भीतर दबी हुई चेतना

को जगाकर हनुमान ने मुझे मनुष्यत्व दिया । हमने अपने धर्म को कर्म को समझा-अपने को पहचाना । अपने राष्ट्र को जाना । राष्ट्र धर्म के प्रति जागरूक हुआ । जम्बूद्वीप का यह प्रतिनिधि हमें आगे बढ़ने का, अम्बुत्थान का मार्ग बताने आया है । भारत सदा से पुण्य स्थल रहा है । लंका का हित भारत से मंत्री करके रहने में है । और यह तभी संभव है जब हम धर्म पर चलें ।

हनुमान ! आप का स्वागत है । एक नारी के प्रति अनाचार सारी नारी जाति का अनादर है । लंका-पति ने अधर्म करके हमें निन्दित किया है । यद्यपि वे मेरे पति हैं पर मैं अधर्म में उनको साथ नहीं दे सकती । मुझे अधर्म का विरोध करना ही है । पति-पत्नी का सम्बन्ध अधर्म-अन्याय-अत्याचार के लिए नहीं । यदि पत्नी पति का अधर्म में साथ देती है तो वह पतिव्रता नहीं । पतिव्रता वह है जो पति को सदा धर्म की ओर प्रेरित करे । हनुमान, मैं आप का आभार मानती हूँ ऐसे संकट के समय आप हमें चेतावनी देने आए हैं । हमारा राष्ट्र, पतन से बचे इसके लिए आप जो मार्ग सुझावें हम सब करेंगे । राष्ट्र स्व से बढ़कर है । परिवार का हित राष्ट्र हित के साथ जुड़ा है । व्यक्ति समष्टि का अंग है । लंका में आज न व्यक्ति का हित हो रहा है और न समष्टि का । राष्ट्र चेतनाहीन एवं निष्प्राण है । अधर्म के मार्ग पर चल कर कोई भी अपने पर गर्व नहीं कर सकता । स्वाभिमान की रक्षा स्वधर्म पर चलकर ही संभव है । हमारे राष्ट्र का स्वाभिमान लौटे हमें ऐसे मार्ग का ही अवलंबन लेना है । हनुमान, जिस प्रकार बिभीषण आप के सहयोगी है उसी प्रकार मैं । दिशा बताइए धर्म की ।

मन्दोदरी ! सत्याग्रह ही सब से बड़ा धर्म है । सत्य की रक्षा के साथ सारे पारमार्थिक गुणों की रक्षा हो जाती है । जहाँ सत्य है वहाँ अधर्म कैसे ? जहाँ सत्य है वह शोषण-अनाचार कैसे ? सत्य है मानव और मानव के बीच के सम्बन्ध की पवित्रता । परस्पर हित ही सत्य की कसीटी है । सत्य की परिभाषा संभव नहीं । सत्य एक विशाल भाव है जिसके साथ सारे मानवीय

मूल्य जुटे हैं। सत्य एक आदर्श है। सत्य वही है जैसा संत का जीवन है। संत सत्य को ही जीता है। संत और सत्याग्रही परस्पर पर्याय हैं। राम ने सत्य की रक्षा के लिए, मानव मूल्यों की रक्षा के लिए, जनहित के लिए, धर्म के प्रसार के लिए, जन-जन से सम्पर्क किया—बिना भेद के अपने समान सबको देखा, सत्य पर चलने के लिए स्वयंसेवक बने। यदि लंका में सत्य के आदर की प्रतिष्ठा करनी है तो राम का साथ देना होगा। राम व्यक्ति नहीं, राम प्रतीक है मानव के मूल्यों का। सीता की मुक्ति के लिए राम आवेंगे अर्थात् लंका की अधर्म से मुक्ति। धर्म जीवन का अंग है। व्यवहार में अत्याचार हो वही अधर्म है। धर्म मन्दिर में पूजा नहीं हृदय की स्वच्छता है, परोपकार की प्रवृत्ति है। धर्म अर्थात् मानव का उत्थान। लंका की पवित्रता की रक्षा के लिए राम जंबूद्वीप और लंकाद्वीप के बीच सेतु का निर्माण करेंगे। हम सब सेतु बनें परस्पर एक दूसरे के हृदय में स्थान पाने के लिए। ज्ञान का आदान-प्रदान विश्व के कल्याण का मूल है। भारत के वन-पर्वत सब लंका के और लंका की रतन-राशि भारत की हो तभी समानता की लहर उठेगी। प्रकृति की सम्पत्ति सार्वभौमिक है इसका उपयोग किसी विशेष देश को नहीं मानव मात्र को करना होगा। परिवार-देश की सीमा हमने बनाई है। यह सीमा आवश्यक होते हुए भी बहुधा अहितकर हो जाती है। सीमा जड़ता का चिह्न है। जिस प्रकार सम्प्रदाय धर्म की सीमा बनाकर चलते हैं और एक सम्प्रदाय दूसरे के प्रति विष उगलता है उसी प्रकार एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के विकास में बाधा डालने में ही अपनी सार्थकता मानता है। राष्ट्रीयता एक सीमा है। राष्ट्र उसी प्रकार बंधन है जिस प्रकार परिवार। परिवार से ऊपर राष्ट्र और राष्ट्र के ऊपर मानवता। समानता भेद से नहीं अभेद से ही संभव है। जो संपदा एक द्वीप में है वह दूसरे द्वीप नहीं अतः सारे द्वीपों को मिलकर समूचे मानव के उत्थान-हित-कल्याण में योग देना चाहिए। सबकी अपनी विशेषता है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिभा भिन्न है उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र की। समस्त प्रतिभा मिलकर ही संसार को आलोकमय बना सकती है।

हनुमान जी, आप ज्ञान, कर्म और भक्ति के समग्र रूप हो। मैं आपके वचन से संतुष्ट हूँ और वचनबद्ध होती हूँ आपके सत्य की खोज में साथ देने के लिए। विभीषण और मैं मिलकर पूरी लंका को उसके कर्तव्यों का बोध कराऊँगी—उसे आत्मबोध कराऊँगी। लंका अंधकार से ग्रस्त है, समुद्र से घिरी होने से वह सुरक्षित अवश्य है पर अंधकूप सदृश है। आज पहली बार उसमें नव-जागरण की चेतना उत्पन्न हुई। लंका की समृद्धि एकांगी है। उसे भारत से सत्य की सीख लेनी होगी। आध्यात्मिक विपन्नता आर्थिक विपन्नता से बढ़कर है क्योंकि विचार ही मानव को, राष्ट्र को आगे बढ़ाते हैं—वे ही प्रकाश-स्तंभ हैं। लंका ने अपनी खिड़कियाँ बन्द कर रखी हैं अब उन्हें खोलना होगा। शुभ विचार, कल्याणमय सन्देश कहीं से भी मिले उसे स्वीकारना होगा, समय परिवर्तनशील है, समय के साथ विचारों में भी परिवर्तन आता है अतः मनुष्य को युग-बोध होना अपेक्षित है। लंका बहुत पिछड़ी है, अंध-विश्वासों से जकड़ी है, जब तक उत्तर की वायु का प्रसार यहाँ नहीं होगा तब तक हम हिमालय की भाँति ऊँचे न उठ सकेंगे। भारत लंका का मुकुट है, वह सदा से आध्यात्मिक ज्योति देता रहा है।

हे हनुमान, हमें क्या करना है? आप कर्तव्य-कर्म की शिक्षा दें। लंका का प्रत्येक प्राणी न्याय का भिखारी है, वह आतंक से मुक्ति चाहता है। उसे न विचार-स्वातन्त्र्य है और न धर्म-स्वातन्त्र्य। वह हर प्रकार से दासवत् जी रहा है। उसमें आत्मबल का संचार करना होगा। उसे वह ज्ञान देना होगा जिससे वह अपनी स्थिति के प्रति विद्रोह कर सके। सत्य-मार्ग पर चलने के लिए बलिदान तो करना होगा ही। आत्म-ज्योति जलानी होगी। समय आ गया है परिवर्तन का, इसीलिए भगवान् ने आप को यहाँ भेजा है, यह अवसर है अम्युत्थान का। गुरु प्रकाश का, किरण का साक्षात्कार कराता है बाकी काम तो शिष्य का है—किरण को प्रज्वलित न किया गया तो वह बुझ जायगी। हमारे ऐसे कितने ही इस लंका में छटपटा रहे हैं समग्र क्रांति के लिए, उन्हें सहारा देना होगा। उनका संगठन करना होगा तभी सत्याग्रह सम्भव है। जन-जन को क्रांति के लिए तैयार करना हमारा काम है। मैं रावण को भी

इस ज्ञान की ओर उन्मुख करने का प्रयत्न कलूँगी भले ही पतिदेव को बुरा लगे । वे पण्डित हैं, विद्वान् हैं, शास्त्रज्ञ हैं उन्हें केवल कर्तव्य-कर्म की ओर उन्मुख करना है ।

मंदोदरी, हमारा किसी व्यक्ति से विरोध नहीं । विरोध है तो उन विकारों से जो समाज के लिए घातक हैं, हृदय-परिवर्तन हमारा लक्ष्य होना चाहिए । आध्यात्मिक क्रांति शस्त्रबल से सम्भव नहीं, हिंसा से सम्भव नहीं यदि हमने साधन गलत चुना तो साध्य दूर हो जायगा । हृदय परिवर्तन का आधार है प्रत्येक के व्यक्तित्व के प्रति आस्था । मनुष्य बुरा नहीं है । सबमें वही ईश्वर है, वही ज्योति है, हां वह ज्ञानाग्नि राख से ढक जाने पर, मलिन विचारों से दब जाने पर प्रकाशहीन हो जाती है हमें उसी आग को प्रदीप्त करना है । धृणा से यह सम्भव नहीं मित्र भाव से, स्नेह से, उदारता से ही आप किसी हृदय में स्थान पा सकते हैं । किसी की बुराइयों को देखकर उससे घृणा करना हमारा धर्म नहीं है, मनुष्य में अच्छाई-बुराई दोनों है । वह विरोधी भावों का समुच्चय है, ऐसा नहीं कि कोई पूरे जीवन बुरा ही बना रहे । वह बुराई के परिणाम को जब भोगता है तब उसकी आँखें खुलती है और तब वह प्रकाश की ओर बढ़ने के लिए उत्सुक होता है । अंधकार, मलिनता, अशांति के बीच ही इसके विरोधी भाव जन्म लेते हैं । यह चक्र सत्य है ।

मंदोदरी—बिभीषण ! हम प्रयास करेंगे कि रावण अपनी भूलों को समझे हम उसे अवसर देंगे सुधार का, सन्मार्ग पर चलने का । एक बार में नहीं अनेक बार की चोट से सफलता निश्चित है । बार-बार विचारों के घात-प्रतिघात से जीवन का संचार स्वाभाविक है । जड़ता सत्य नहीं वह सत्य का अभाव है । सत्य के प्रकट होते ही जड़ता स्वतः विलुप्त हो जाती है । सूर्य प्रतिदिन प्रकाश फैलाता है वह अपना धर्म, कर्म करता है । कोई कभी जगता है कोई कभी । हमारा काम सम्यक् ज्ञान, सम्यक् आचरण, सम्यक् विचार का प्रसार करना है—यह प्रयास निष्फल नहीं जा सकता । सारी सृष्टि

प्रकाश चाहती है भले ही वह कुछ क्षण अंधकार से ग्रस्त हो। मानव संस्कृति का विकास इसी नियम का फल है। अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ना व्यक्ति और समष्टि दोनों का सहज धर्म है, अतः हमें प्रत्येक के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धावान् होना चाहिए। हमारा व्यक्ति से विरोध नहीं कुकर्म से विरोध है।

संतो, व्यक्ति को सब से बड़ा मोह अपने प्राण का होता है। प्राण प्यार चाहता है। प्यार वही कर सकता, वही दे सकता है जिसका हृदय निःस्वार्थ हो। अथवा, जिसे प्यार देने, बाँटने में खुशी हो। स्वार्थी, अहंकारी प्यार नहीं दे सकता। स्वार्थ तृष्णा का ही नाम है, स्वार्थी भोग चाहता है भोगी दूसरों को प्यार कैसे देगा? प्यार करने वाले, बाँटने वाले को अपने सुख की चिन्ता नहीं होती। उसका रोम-रोम प्यार के लिए आनन्दित हो उठता है। प्यार वही शुद्ध है जहाँ प्यार करनेवाला सारे कष्टों को भेल कर दूसरे के लिए प्राण तक दे सकता है। प्यार प्राण का सौदा है। जहाँ प्यार नहीं वहाँ जीवन का सच्चा सुख नहीं। विडम्बना यह है कि प्यार चाहता प्रत्येक है पर प्यार बाँटने को कोई तैयार नहीं। वह नहीं जानता कि प्यार करेंगे तब प्यार पावेंगे—जो बाँटेंगे वहाँ पावेंगे। स्वार्थी चाहता है कि उसे दूसरे प्यार, आदर, स्नेह दें पर वह अपने सुख को छोड़ना नहीं चाहता दूसरों के लिए। परमार्थ भाव के अभाव में न वह प्यार पाता है और न वह दूसरों को प्यार का सुख उठाने देता है।

मंदोदरी-बिभीषण ! उसी प्यार को बाँट रहे हैं राम। यही उनका आकर्षण तत्त्व है, सारे नर-नारी उनकी ओर खिंचे चले आते हैं क्योंकि सबको प्यार की भूख है। राम लंका को विध्वंस नहीं करना चाहते हैं। वे क्रांति चाहते हैं भावनाओं, विचारों में। उन्हें उस संकीर्णता से विरोध है जो केवल अपने लिए है, जो व्यक्ति को सीमित बना देता है स्व में। स्व के पीछे भागने-वाला ही सारा अनर्थ करता है। उसे दूसरों की सुख-सुविधा का ध्यान नहीं केवल अपनी तृष्णा की तुष्टि ही उसका लक्ष्य होता है। रावण ऐसेही व्यक्ति

का नाम है, रावणत्व-राजसत्व वहीं है जहाँ दूसरों की अवहेलना हो, जहाँ दूसरों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया जाय, जहाँ दूसरों के आत्म-सम्मान को कुचला जाय, जहाँ परस्पर प्रेम का नहीं घृणा का सम्बन्ध हो। लंका अपने पापों से स्वयं जल रही है उसे मैं क्या जलाऊँ। वह स्वयं समाप्त हो रही है। पाप की ज्वाला सबसे भयंकर होती है। भक्तों को, सन्तों को, सदाचारियों को, अध्यात्मवादियों को जहाँ समुचित स्थान न मिले वह राष्ट्र कैसे जीवित रह सकता है ?

हे श्रेष्ठ संदेशवाहक ! हमें राम का साक्षात्कार तुम्हारे माध्यम से हो रहा है। हम अपने को धन्य मान रहे हैं। राम हमसे दूर होते हुए भी हमारे निकट हैं। तुम्हारी लाली राम की ही लाली है। तुम्हारे प्यार के संदेश में राम का ही बल है। लंका का यह भाग्य है कि आप यहाँ आये। सीता न आती तो आप न आते। सीता का आना कल्याण का कारण बना। अभिशाप में बरदान इसी प्रकार छिपा रहता है। सीता स्वयं करुणा—दया, प्यार की मूर्ति हैं उनके चारों ओर पशु, पक्षी निर्द्वन्द्व घूमते हैं। हम सब इस प्रकार उनसे घुलमिल गये हैं जिस प्रकार बच्चे अपनी माँ से। वह प्यार ही हममें अध्यात्म की ज्योति जलाती है। हम चाहे जहाँ रहें सीता ही को देखते हैं। वह कल्याण की देवी लंका को बदल देगी। जिस लंका में परस्पर घृणा का प्रसार था वहाँ हम सब एक दूसरे के निकट आ रहे हैं। हमारे स्वभाव बदल रहे हैं—जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण बदल रहे हैं। जीवन का चरम लक्ष्य प्रेम है, सद्ब्यवहार है, सदाचार है—इससे विपरीत भाव विष्वन्सात्मक हैं। विभीषण और मन्दोदरी अब राम के ही हैं, तुम्हारे हैं। हम सब मिलकर लंका को नवजीवन देंगे। आप मार्ग प्रदर्शन करें।

विभीषण-मन्दोदरी ! हमें सबसे पहले रावण के ही पास चलना है। उसके हृदय-परिवर्तन की बात प्यार से सम्भव है। यदि हम किसी से घृणा करेंगे तो वह हमसे घृणा करेगा। यदि हम सत्य की रक्षा करते हुए उसे निःस्वार्थ से दया-करुणा-प्रेम की ओर मोड़ने का प्रयास करेंगे तो कभी न

कभी सफलता निश्चित है। रावण पाषाण नहीं मानव है। उसमें भी जीवन, प्रेम, शान्ति की वही लालसा है जो हम सबमें है। अज्ञानवश-स्वार्थवश मनुष्य कर्तव्य-सत्य छोड़कर कुकर्म करने लगता है पर हृदय में उसके अज्ञान्ति रहती है—अपने गर्व की रक्षा के लिए वह उसी मार्ग पर चलता है जिस पर वह चल रहा है; उसमें यह साहस नहीं होता कि एक भटके में कुमार्ग छोड़कर सन्मार्ग अपना ले। पर सत्संग से उसमें आत्मबल का आविर्भाव होता है और वह कभी न कभी आत्मबल से युक्त हो बुराइयों से संन्यास ले लेता है। रावण अच्छा न हाता तो सीता की मर्यादा की रक्षा न करता। वह सीता को आदर देता है भले ही उसने उनको अपहृत किया हो। विवेक सबमें होता है वह जाग्रत बना रहे यही करना है। अच्छाई और बुराई का युग्म है। जहाँ कुम्भकर्ण हैं वहीं विभीषण भी तो हैं। जहाँ रावण हैं वही मन्ददोरी भी तो है। अन्धकार और प्रकाश जुड़े हैं भले ही वे अलग-अलग मालूम हों। एक दूसरे में वे विद्यमान हैं। कोई भी वस्तु या भाव न पूर्ण कष्टप्रद है और न पूर्ण सुखप्रद। शुद्ध तो केवल ब्रह्म है जो कल्पना जगत् में है। सृष्टि तो द्वन्द्व पर टिकी है। संसार के किसी भाग में अन्धकार है तो किसी भाग में प्रकाश। मनुष्य से किसी कोने में अविवेक है तो किसी कोने में विवेक। कभी वह घृणा से आक्रान्त है और कभी वही प्रेम के आँसुओं से द्रवित। कभी वह क्रूरता-कठोरता मलिनता की वाणी का प्रयोग करता है और कभी प्रेम, करुणा सेवा-शान्ति का। अतः, जीवन-जलधि में जल और अग्नि का साथ-साथ निवास है। हमारा काम है कि मनुष्य को उसके नैतिक गुणों की ओर आकृष्ट करें—उसको रचनात्मक विचारों की ओर उन्मुख करें। यह प्यार से ही सम्भव है। घृणा से नहीं। अतः, हमारा विरोध रावण से नहीं। हम सब में रावण है भले ही वह दबा है।

पर हनुमान जी, रावण के पास पहुँचकर इस प्रकार जीवन मूल्यों की, नैतिकता की अध्यात्म की बात करना क्या सम्भव है? वह तो तलवार से बात करता है। उसकी जबान में लगाम नहीं। वह तो क्रोध का ही रूप है। वह

मुझे और मन्दोदरी को देखकर ही आगबवूला हो उठेगा और राम के दूत के साथ कितना अशिष्ट हो जायगा इसकी कल्पना भी आप नहीं कर सकते। वह राम के नाम से ही चिढ़ता है। वह सत्कर्म और ज्ञान की बात क्यों सुनना चाहेगा ? उसका मन रात दिन पड़्यन्त्र में रहता है। वह छली-कपटी न्याय क्या जाने ? हमने और मन्दोदरी ने उसने कितनी बार सचेत करने का प्रयत्न किया पर हमारी बातों का उस पर उल्टा ही प्रभाव पड़ता रहा। फलतः, हमने उस प्रयास को छोड़कर अपना स्वतन्त्र रास्ता चुन लिया। रावण का दरबार उसके आतंक से चाटुकारों से भरा पड़ा है। जो भी उसकी हाँ में हाँ न मिलावेगा उसको निष्कासन का दण्ड भुगतना पड़ेगा। सब उसके भय से त्रस्त हैं। हनुमान ! जैसा आप निर्णय लें। मन्दोदरी से भी पूछें उसकी क्या सम्मति है।

मन्दोदरी ! मैं जानता हूँ तुम्हारी मानसिक स्थिति कैसी होगी। तुम्हारे बलि में और तुममें अद्वैत भाव है—पति-पत्नी का पवित्र सम्बन्ध सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध है। दाम्पत्य सुख तभी संभव है जब एकता हो। पर तुम दोनों की जीवन-दृष्टि भिन्न है—जीवन मूल्यों के प्रति तुम्हारी जो आस्था है वह लंकेश की नहीं। लंकेश किसी को भी विचार-स्वातंत्र्य नहीं देना चाहते—किसी की भावनाओं को आदर देना उनके स्वभाव में नहीं। ऐसी स्थिति में यह बड़ा भारी सामाजिक प्रश्न उठता है कि जहाँ पति-पत्नी की नीतियों में, आचरण में विरोध हो वहाँ पत्नी किस प्रकार पति के अनुकूल बनी रहे। क्या पातिव्रत धर्म का आशय है पत्नी की स्वतंत्रता का अपहरण ? क्या पुरुष के अन्याय का शिकार बना रहना उसका धर्म है ? क्या वह अवहेलना सहती रहे और आध्यात्मिक मूल्यों को ताक पर रखती रहे ? पति की उच्छृङ्खलता को सहन करना क्या नारी का अपमान नहीं है ? ये सारे जीवनपरक प्रश्न बड़े गम्भीर हैं। क्योंकि गार्हस्थ्य जीवन से इनका सम्बन्ध है। इस दुख का निराकरण क्या इसे सहते रहना है ? मुझे विश्वास है रावण ने सीता के हरण का जो उपक्रम बनाया होगा उसका तुमने पूरा विरोध किया होगा पर विवेक नष्ट होने पर मनुष्य

कर्तव्य-कर्म से भ्रष्ट होकर ही रहता है। यदि रावण तुम्हारी सम्मति की अवहेलना न करता तो आज लंका विध्वंस के कगार पर न खड़ी होती। राजा यदि भोग वृत्ति को प्रश्रय दे और न्याय-धर्म को ताक पर रख दे तो राजा और प्रजा का सर्वनाश सहज स्वाभाविक है। रावण ने न समाज की चिंता की, न नारी के भावों की परवाह की। उसने एक मात्र अपने अहंकार की तुष्टि में इतना वीभत्स और अकरुण कार्य कर डाला। जनमत का उसने अनादर करके लंका की नींव को हिला दिया। यह सोने की लंका अब राख की लंका हो जायगी। सीता के अपहरण से लंका की कोई नारी प्रसन्न नहीं हो सकती; यह समस्त नारी जाति की भावनाओं के प्रतिकूल है। जिस राष्ट्र में नारी की पूजा के स्थान पर अवहेलना हो वह देश कैसे जीवित रह सकता है! मन्दोदरी, अब हम सबको वही करना है जिससे सत्य-सदाचार की प्रतिष्ठा हो, जिससे यह राष्ट्र सुरक्षित रहे और जंबूद्वीप के साथ इसका मंत्री सम्बन्ध हो। राम-रावण-युद्ध महाभारत होगा और इसमें मनुष्य-शक्ति का, धन का नाश निश्चित है। युद्ध का फल कटुता वमनस्य है। इसलिए युद्ध न हो और विवेक के साथ हम संधिपूर्वक अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुए रह सकें ऐसा कुछ करना होगा। बिभीषण रावण के ही अंग हैं पर रावण की अहंकारप्रियता ने उससे भाई का अपमान कराया। फल हुआ बिभीषण ने रावण का अनुयायी होना स्वीकार न किया; ऐसा विद्रोह मानवमूल्यों की रक्षा के लिए अनिवार्य है। तुम अधर्मांगिनी हो पर पति ने मनमानी की। रावण ने व्यक्ति-समष्टि सबका अपमान किया। ऐसे व्यक्ति को समाज आदर कैसे दे सकता है? आतंक का बल क्षणस्थायी है। राजा प्रजा के हित के लिए है, उसके हितों की रक्षा के लिए है न कि उनके विनाश के लिए। राजा-प्रजा का सम्बन्ध अन्याय पर नहीं प्रेम पर टिका रह सकता है। मन्दोदरी जो हुआ सो हुआ अब हमें कुछ ऐसा करना चाहिए जिससे लंका की प्रतिष्ठा लौट आवे और इस राष्ट्र का मस्तक और मनोबल ऊँचा हो सके। राष्ट्र की सुरक्षा प्राणपण से करना प्रत्येक आर्य का धर्म है। हाँ, रक्षा के साथ सत्य का संयोग होना चाहिए।

जहाँ सत्य से दूर हटे राष्ट्र भी व्यक्ति की भाँति स्वार्थी-लोभी-अहंकारी और तामसी वृत्तिवाला हो जायगा। जो व्यक्ति में है वही समष्टि में। जिन भावों से व्यक्ति का पतन होता है उन्हीं से समाज का—राष्ट्र का, मानवता का। इसीलिए, धर्म को व्यक्ति-समष्टि सब से ऊपर रखना चाहिए। धर्म की रक्षा मानव मूल्यों की रक्षा है। मानव मूल्य मेरुदण्ड है मानव जीवन का।

मन्दोदरी, माना कि रावण इस समय तामसी वृत्ति का है, विध्वंसकारी विचारों का शिकार है पर यही स्थिति सदा नहीं रहती। क्षणक्षण पर ऋतु की भाँति मनुष्य बदलता है जो भाव अभी है वह दूसरे क्षण नहीं भले ही यह परिवर्तन हमें न दिखाई दे। सचाई यह है मनुष्य शुभ-अशुभ के दोले पर सदा झूलता रहता है कभी शुभ का पलड़ा भारी और कभी अशुभ का। यह द्वन्द्व ही मानव के अस्तित्व के मूल में है—जन्म-मृत्यु दो विरोधी भाव इसी के प्रतीक हैं। जन्म के साथ ही सतत परिवर्तन का आरम्भ। परिवर्तन को जीवन का आधार मानकर ही सुख दुःख में अभेद और शांत भाव बनाए रखना संभव है। जड़ता नहीं चेतनता। परिवर्तन का दूसरा नाम ही चेतनता है। जहाँ परिवर्तन नहीं वहीं जड़ता है। विकास का आधार परिवर्तन ही है। अतः, मनुष्य के स्वभाव-विचार सभी में परिवर्तन का भाव नित्य सत्य है। रावण हो या कोई सबके भीतर आसुरी और दैवी भावों का युद्ध निरन्तर चलता रहता है। अतः किसी को भी जड़-स्पंदनहीन न मानें—समय बदलाव लाता है यह प्रुव है।

गुरुवर ! आप मानव मात्र के प्रति उदार हैं, सहिष्णु हैं। सभी के प्रति आप की ममता है। सभी के गुणों का आप आदर करते हैं। आप को किसी से वैर भाव नहीं, किसी से घृणा नहीं। जिस रावण ने आप के स्वामी की पत्नी का अपहरण किया उसे भी अवसर देना चाहते हैं सत्य पक्ष पर चलने के लिए। आज मैंने जो दिव्य ज्ञान आप से प्राप्त किया उससे

रावण अथवा किसी के प्रति मेरे घृणा के भाव समाप्त हो गए । मैं रावण को पुनः समझाऊँगी, पुनः पुनः उन्हें सत्य पर चलने के लिए प्रेरित कहूँगी— उनकी मानवता को प्रेरित कहूँगी । मैंने सीखा, कि सबके भीतर पावन ज्योति का निवास है भले ही किसी क्षण कोई अमानुषिक कार्य कर बैठे । हमारा धर्म है किसी को भी उसकी आत्म-ज्योति के प्रति सचेत करना । बार-बार चेतनता का स्मरण दिलाने से जड़ में भी जीवन का संचार संभव है । आप की वाणी से मेरे अंतस्तल में जो ज्योति जगी है वह प्रत्येक में जग सकती है इसी विश्वास से हमें कर्तव्य-कर्म अथवा तत्त्व ज्ञान के प्रसार में लगना है ।

बिभीषण, आज हमारी आँखें इस दिव्यवाणी से खुल गईं । मनुष्य बुरा नहीं है वह वही है जो परमज्ञानमय है अतः किसी के प्रति भी अशुभ न होना चाहिए । प्रत्येक का मानसिक भाव क्षण-क्षण बदलता है—किस क्षण ज्ञान की चिनगारी किसी छू ले कोई नहीं कह सकता । व्यक्ति ज्योति जलाने के लिए कितनी ही शलाकाएँ जलाता है—कितनी इनमें बुझ जाती हैं, कितनी प्रभावहीन होकर विनष्ट हो जाती हैं पर कोई एक शलाका प्रज्वलित होकर दूसरे को दीप्त कर देती है । अतः एक सलाई नहीं अनेक-अनेक सलाई का प्रयोग करने से घबड़ाना नहीं—यही धर्म की परीक्षा है । मनुष्य मूलतः शुभ है, पवित्र है, दिव्य है और वह शुभ की चरम स्थिति को प्राप्त करने के लिए जन्म से मरण तक विकास करता है । यह तत्त्व हमें स्मरण रखना चाहिए । इससे मानवमात्र के प्रति हमारी आस्था बनी रहेगी । घृणा का भाव छोड़कर प्रेम को अपनाना होगा हृदय परिवर्तन के लिए । प्रेम और सेवा जीवन के दो प्रकाश स्तम्भ हैं । वस्तुतः प्रेम का व्यावहारिक रूप ही सेवा है । प्रेम के बिना सेवा संभव नहीं और सेवा तो प्रेम-स्नेह-विश्वास-श्रद्धा भावों का ही बाह्य अथवा प्रकट रूप है । सूक्ष्म और प्रकट का विलय सम्बन्ध है—दोनों अभेद हैं । जिस प्रकार बीज और वृक्ष में बाह्य भिन्नता होते हुए भी अभेदत्व है उसी प्रकार प्रेम और सेवा में । प्रेम का विराट् रूप

सेवा है । ईश्वर ने विराट् जगत् को प्रकट कर प्रेम का ही परिचय दिया है । मनुष्य जीवन, ईश्वर की भाँति, प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए ही है ।

बिभीषण, चलो हनुमान के साथ हम दोनों उस प्रेम स्वरूप देवी सीता के आलोक में आप्लावित हों—सीता और प्रेम नाम भेद है । सीता का जन्म पृथ्वी से है संसार को प्रेम-पाठ पढ़ाने के लिए ही—धरती माँ ने सीता को इसीलिए प्रकट किया है । सीता की वाटिका में वृषा को स्थान नहीं—उनके निकट जो भी जाता है वह उस गंगा के दर्शन मात्र से मुक्ति पा लेता है—अन्धकार प्रकाश में बदल जाता है, अनास्था आस्था में बदल जाती है । देखो न, वहाँ के पुष्प उस प्रेम-सुरभि से परिपूर्ण हैं वे कभी म्लान नहीं, वृक्षों-पादपों के किसलय सदा अरुण, सदा रागमय मानों प्रेम का रसरंग बह रहा हो, वहाँ पवन भी मंदगति से बहता है ताकि वह प्रेम-मूल देवी के सम्पर्क में अधिकाधिक क्षण बिता सके, देखो ये बादल-अभ्र उस वाटिका में छाए रहते हैं मानों वे चाहते हैं पहाड़ की चोटियों से उतर कर उस देवी का स्पर्श करना । चारों ओर प्रेम का ही राज्य है सीता के समीप । धन्य है वह ज्योति, जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य ज्योतिमय हो उठता है । शांत, स्वस्थ, योगरूप, समाधिस्थ बैठी सीता के प्रकाश के सम्मुख लंकेश इस भय से नहीं आता कि कहीं वह भस्म न हो जाय । भक्त जिस आलोक से अपने को प्रकाशित अनुभव करता है उसी से क्लुषित भावोंवाला भय करता है । शुभ को ग्रहण करने के लिए हमें शुभ होना पड़ेगा । हमारी प्रतिक्रिया हमारे मनोभावों को व्यक्त करती है—एक ज्योति किसी के लिए प्राणप्रद और किसी को भयप्रद । वस्तु अथवा आलंबन की अपेक्षा आश्रय का महत्त्व अधिक है ।

देवी मन्दोदरी ! मैं तो सीता के सम्मुख एक विचित्र शान्ति का अनुभव करता हूँ । मैं सोचता हूँ क्या भगवान् ने मेरे लिए ही सीता को लङ्का भेजा । रावण ने भले ही यह अपराध किया हो पर उस अभिशाप में पुण्य छिपा है । सीता का आना हनुमान के आगमन के मूल में है । राम का आना

अब सुनिश्चित है। जहाँ सीता और हनुमान हैं वहाँ राम न पहुँचे ? मेरा
 मन बोल रहा है राम प्रयाण कर चुके हैं लङ्का के लिए—हनुमान उसी के
 वाहक हैं। हनुमान ज्ञान-गुणनिधान, बलवान हैं और सेवा के स्वरूप हैं।
 ऐसी सेवा हम सब भी अपनावें यही हनुमान का सन्देश है। हनुमान सब के
 पूज्य हैं, सबके रक्षक हैं सबके मार्गदर्शक और सबके गुरु। सीता पृथ्वी
 की, राम यज्ञ के और हनुमान पवन की देन हैं—ये सभी पावन हैं। इन
 अलौकिक विभूतियों के सम्पर्क में आकर कौन पवित्र और प्रेममय न बनेगा !
 मन्दोदरी, माँ सीता के दर्शन के लिए चलें—आज हमारे साथ प्रेम के साक्षात्
 रूप हनुमान हैं अतः आज का दर्शन तो अत्यन्त पुण्यमय होगा। हनुमान के
 चरणस्पर्श मात्र से समुद्र कितना उल्लासमय है—इसकी भावभंगिमा कितनी
 जीवंत है। वह प्रेमपयोधि मानों यही संदेश रहा है कि जीवन का रस प्रेम
 में ही है। वह राम की प्रतीक्षा में चंचल हो उठा है—वह लहरों से सीता
 को राम के आने का संदेश सुना रहा है उसकी तुमुल ध्वनि राम के स्वागत
 के लिए ही है। पक्षियों का कलरव उस सुप्रभात की प्रतीक्षा में ही है।
 सूर्य की किरणों की अरुणिमा उसी राम-प्रेम से युक्त है। धन्य हैं वे राम !
 जिनका सर्वत्र स्वागत है। वे सर्वत्र रमण करनेवाले हैं इसीलिए उन्हें राम
 कहा गया है। 'र' जिह्वा पर नियन्त्रण का और 'म' होठ पर नियन्त्रण का
 सूचक है—सम्यक् वाक् का गुण जिसके पास है वही सन्त है। वाणी से
 हमारी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त होती है, प्रतिक्रिया पर हमारा संयम हो यही
 रामत्व है—क्रोध-मोह-लोभ-अहंकार सभी वाणी द्वारा प्रकट होते हैं, वाणी
 पर अधिकार—विकारी भावों पर अधिकार। चलो मन्दोदरी ! हनुमान के
 मार्ग दर्शन और सीता की छाया में हमारा नया जीवन प्रारम्भ हो रहा
 है। जीवन में क्रान्ति का श्रेय रामदूत को है। आज हमने समझा जीवन
 किसे कहते हैं—मनुष्य के जीवन का ध्येय क्या है और उस ध्येय को कैसी
 साधना से प्राप्त किया जा सकता है। साधन और साध्य की पवित्रता यदि
 अक्षुण्ण रहे तो अध्यात्म सहज हो जाता है। लङ्का वैभव से पूर्ण होते हुए
 भी अध्यात्म अथवा मानव मूल्यों के अभाव में दरिद्र है। मानव मूल्यों के

प्रति आदर न होने से ही इस राष्ट्र ने कुपथ का अनुसरण किया। पद-लोलुपता ने बड़े-बड़े विद्वानों के भी मुँह बन्दकर दिए हैं—किसी शास्त्रज्ञ ने रावण की करनी का विरोध न किया। वैभव-पद का लोभ ही पतन का मूल है। जिस राष्ट्र में अध्यात्म-सदाचार का आदर नहीं, जो चाटुकारों के इशारे पर नियन्त्रित है वह राष्ट्र कहलाने योग्य नहीं। राष्ट्र की एकता जन-जन के मन की एकता है। जहाँ जनता को विचारों की स्वतन्त्रता हो, जहाँ विरोध राष्ट्र के विकास के लिए हो, जहाँ शौर्य के साथ धर्म का मेल हो वहीं राष्ट्र का नाम सार्थक है। लङ्का को नवराष्ट्र बनाना है। इसके अभ्युदय के साथ श्रेयस् का योग करके इसे परमार्थपरक राष्ट्र बनाने का संकल्प है।

[सीता के सम्मुख समुपस्थित हनुमान के साथ विभीषण और मन्दोदरी। माँ सीता वरद हस्त उठाकर प्रेम-श्रद्धा-उदारता-सुरक्षा का सन्देश देती हैं—]

रानी मन्दोदरी, तुम नारी की पवित्रता की प्रतीक हो। तुम्हारे जीवन में अभ्युदय के साथ परमार्थ, प्रेम के साथ श्रेय का योग है इसलिए तुम सती-साव्वी हो। मैं जानती हूँ, समझती हूँ कि रावण की श्रद्धाङ्गिनी होते हुए भी तुम सत्य पर आरूढ़ रहनेवाली नारी हो—तुम्हारा अपना व्यक्तित्व है। तुम अपने भीतर बैठे हुए चेतन के प्रति श्रद्धावान् हो। तुम आत्मा की आवाज का अनुसरण करती हो। तुम वैभव से अधिक मानव मूल्यों को सम्मान देती हो। जीवन की सार्थकता इसी में है। आओ, ब्रह्मिन बैठो। यह वन, यह वाटिका तुम्हारी उपस्थिति से पवित्र होगी। सत्य पर आरूढ़, धर्म पर चलनेवाली नारी सूर्य से अधिक प्रकाशपुंज रखती है—उसके तेज के सम्मुख मलिनता ठहर नहीं सकती। विश्वास रखो सत्य की विजय निश्चित है—असत्य का अन्धकार मिटने को है। अन्धकार में से ही न्याय-धर्म का प्रकाश उत्पन्न होता है। कालचक्र का कुछ ऐसा ही नियम है। लङ्का का वैभव ही लङ्कापति

के अहंकार का कारण है और अहंकार ही मनुष्य को कर्तव्य से विमुख करता है—उसके ज्ञान को हर लेता है। ज्ञान की समाप्ति के साथ प्रलय निश्चित है। लङ्का तुम्हारी पवित्रता और विभीषण की धर्मनिष्ठा से ही बची है।

भाई विभीषण, तुम्हारा स्वागत है। लंका रावण की नहीं तुम्हारी है इसलिए कि तुम न्याय पक्ष के पथिक हो। जो सत्य-श्रेयस् का अनुगामी है अम्युदय उसके पीछे-पीछे है। वैभव का मोह तुम्हें नहीं है। पर, वैभव अंततः उन्हीं को वरण करता है जो धर्म का अनुसरण करते हैं। धर्म के बिना धन की शोभा नहीं। मुझे पता है कि रावण को तुमने बार-बार अधर्म पर चलने से रोका है पर मोह-मय के अंधकार में ज्ञान-दृष्टि काम नहीं करती, भीतर की चेतनता दब जाती है। कोई भी व्यक्ति यदि भीतर की आवाज की बार-बार अवहेलना करता रहेगा तो वह आवाज सुनाई ही नहीं पड़ेगी। यदि कोई उसे श्रद्धा से सुनेगा और तदनुसार आचरण करेगा तो हृदय निर्मल होता जायगा और भीतर की आवाज प्रत्येक क्षण सुनाई पड़ती रहेगी। यह सामान्य नियम है जिसकी अवहेलना करेंगे वह आप से दूर हो जायगा। अतः धर्म की अवहेलना करने से धर्म दूर हो जायगा और विवेक-शक्ति समाप्त हो जायगी। यदि आप आत्मा को अपनावेंगे तो आत्मा आप को बदले में सतत प्रकाश देगी। इसीलिए श्रद्धा का महत्त्व है। श्रद्धा बिना ज्ञान नहीं। ज्ञान तभी संभव है जब आप ज्ञान के प्रति आतुर हों—आप श्रद्धालु हों उस ज्ञान के स्वागत को। विभीषण हम सबके भीतर वही ज्योति है। उससे समरस होने पर ही हम संतत्व प्राप्त कर सकते हैं। बाहर की ज्योति में वैभव प्रकाशित होता है और भीतर की ज्योति से आत्मानन्द मिलता है।

हनुमान ! तुम्हारे कारण आज इन दो संतों का मैं दर्शन पा सकी, ये लंका के प्रकाश-स्तम्भ हैं। ये मानव जगत् के कीर्तिस्तम्भ हैं। लंका द्वीप

और जंबू द्वीप का आपसी सम्बन्ध इन्हीं की उदारता से संभव है। दोनों राष्ट्र मिलकर ही एक दूसरे को समृद्ध बना सकेंगे—पड़ोसी राष्ट्रों में मित्रता सामाजिक उन्नति के लिए अपेक्षित है। अतः इनके माध्यम से तुम्हारा यह प्रयत्न होना चाहिए कि भारत और लंका की मैत्री की नींव पड़े। समुद्र पर सेतु बनाकर तुम इस कार्य में सहायक हो सकते हो। यातायात की सुविधा से ही सहयोग विकसित हो सकेगा। सेतु दो हृदयों को, दो राष्ट्रों को मिलाता है। हम सब सेतु बनें यही जीवन की सार्थकता है। मानती हूँ कि इस विशाल सागर पर सेतु निर्माण एक जटिल प्रश्न है पर जहाँ इच्छा है वहाँ रास्ता निकलेगा ही। विज्ञान हमारा सहायक है यदि हम दृढ़तापूर्वक निश्चय कर लें निर्माण के लिए। मनुष्य की शक्ति असीम है, उसकी इच्छा शक्ति सब कुछ कर सकती है। आदिम युग से मनुष्य ने विकास कर आज संसार को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया है, अभी विकास होना ही है। विकास की सीमा नहीं—बढ़े चलो 'चरैवेति चरैवेति' यही वैदिक संदेश है। क्रान्ति बुझा रही है—सोने का समय नहीं है—उठो, जागो, खड़े हो जाओ, चल पड़ो।

×

×

×

माँ सीते ! हम सभी एकयुत होकर नवनिर्माण में जुटेंगे। मन्दोदरी मन्दाकिनी की भाँति पवित्र और परोपकार-परायणा है। सत्य ही इसका धर्म है। लंकेश की अछूतलता का विरोध जिस निर्भीकता से इसने किया है वह इतिहास में बेजोड़ है—किसी नारी का पति के अत्याचार के प्रति विद्रोह सम्भवतः पुरे इतिहास में पहला और अत्यन्त प्राणवन्त है। इसने पातिव्रत धर्म की नयी व्याख्या की—पति का हित ही नारी का धर्म है और वह हित शुभ कर्म से ही सम्भव है। शुभ कर्म सत्य की अपेक्षा रखता है। सत्य वही है जिससे प्राणिमात्र का कल्याण हो—किसी के प्रति अन्याय नहीं। अन्याय और अन्यायी का विरोध करना पहला उत्तरदायित्व है सत्याग्रही का, भले ही इस रास्ते में कष्ट ही कष्ट हों। कष्ट तो होंगे ही पर वे कष्ट—काँटे ही फूल बन जाते हैं। काँटों को फूल मानना ही जीवन-दर्शन का

गुरु है। अध्यात्मवादी काँटा और फूल में अन्तर नहीं करता, वह सब राम का प्रसाद मानता है। मनुष्य कर्ता है पर वह जब अहंकार से प्रेरित होकर कुछ करता है तब सारे भाव विषम हो जाते हैं—जहाँ अनुकूल प्रतिक्रिया की सम्भावना होती है वहाँ भी प्रतिकूलता। अहंकार नहीं तो कर्तापन का अभिमान नहीं। जब अभिमान नहीं तो न फूल की चाह और काँटों की उपेक्षा। जीवन दर्शन अथवा जीवन-दृष्टि यदि गँदली है, मोह से अन्धी है तो क्या अनुकूल है और क्या प्रतिकूल यह समझा ही नहीं जा सकता।

माँ, मेरा नाम बिभीषण है अर्थात् मैं भय उत्पन्न करने वाला बिभीषक हूँ पर जबसे राम के आश्रय में अपने को डाल दिया तबसे न मुझसे किसी को भय है और न मुझे किसी का भय। भय तो वहाँ टिकता है जहाँ आक्रामक और शोषित के सम्बन्ध हों। सबके प्रति भक्तिभाव रखनेवाला आतंक-त्रास कैसे फैला सकता है? हाँ, जो कुमार्गगामी है वह सत्य से, प्रकाश से, सत्संग से भयभीत हो सकता है और उसे होना भी चाहिए। भय का महत्त्व है—भय न हो तो अकर्म ही फले-फूले। कर्तव्य का भय, शील का भय, समाज का भय लोकलज्जा का भय, परम्परा का भय, राष्ट्रीय गरिमा का भय, मानवता के मूल्यों का भय सर्वाङ्गीण विकास के लिए सर्वथा अपेक्षित है। जिस प्रकार अँधेरे से हम डरते हैं उसी प्रकार पाप से। पाप अर्थात् दूसरों का अपकार—दूसरों की उपेक्षा, दूसरों के स्वास्थ्य के प्रति उदासीनता। पाप-पुण्य सामाजिक सन्दर्भ में व्याख्यायित होने चाहिए। इनसे कटकर न कोई कर्म पाप है और न कोई पुण्य। मनुष्य गंगा बने जिसमें स्नानकर सभी पवित्र-निर्मल होते हैं—गंगा को किसी से भय नहीं और न गंगा किसी से भयभीत। गंगा बिना भेद के सब की हितैषिणी है। यही दशा यमुना की है। यही सूर्य-चन्द्र की है। यही पवन की है। यही हिमालय की है। यही समुद्र की है। ये आदर्श जीवन में उतारने हैं।

बिभीषण, नाम तो एक आवरण है यह वस्तु का बोध नहीं करता।

शीघ्रों के नाम उनके गुण-रूप पर रखे गए हैं पर, मनुष्य के जन्म लेने पर हम अपनी भावनाओं-संस्कारों के अनुसार उसका नामकरण करते हैं। तुम्हारा जन्म राक्षस परिवार में हुआ। तुम्हारी सांस्कृतिक परम्परा का तुम्हारा नाम परिचायक है। पर तुम राक्षस नहीं। तुम्हारा हृदय समुद्र तट के नारिकेल-कदलीफल के भाँति निर्मल-मृदु-मधुर है। तुमने चरितार्थ किया कि नाम रखना किसी का काम है पर कर्म करना मेरा। अब तुम्हारे निर्मल अध्यात्मपूर्ण विचारों के आधार पर मैं तुम्हें अभय कह सकती हूँ। तुम वृवन किसलय की भाँति अरुणिमा-अनुराग से युक्त, शंख की भाँति पवित्र, समुद्र की भाँति गम्भीर, दक्षिण पवन की भाँति सुखप्रद। तुम्हारे कर्मों से तुम्हारा नाम पवित्र हो गया। तुमने संसार को दिखा दिया कि भय बाहर से नहीं अपनी भावना से उत्पन्न होता है। मन्दोदरी का ही नाम लो वह शब्द-अर्थ की दृष्टि से मन्द + उदरी है पर वह मन्द-मूढ़ नहीं, वह ज्ञान की देवी सती-साध्वी है। वह है अहल्या-सावित्री से अधिक पवित्र। जिस तप को वह कर रही है वह उसे संसार में पातिव्रत धर्म को पालनकरनेवाली नारियों में सर्वोच्च स्थान देगा। बिभीषण तुम नरपुंगव हो—तुम्हारे चारित्रिक प्रकाश से लोगों को धर्म की स्थापना में सहायता मिलेगी।

माँ, पर, मुझे लोग विश्वासघाती कहते हैं—कहते हैं भाई के साथ दुर्व्यवहार किया बिभीषण ने—लङ्कापति का साथ छोड़कर शत्रु से जा मिला। यह राष्ट्रद्रोही है। इसे राष्ट्र से निष्कासन का दण्ड मिलना चाहिए—मुझे तो लङ्का के मन्त्रिगण मृत्यु-दण्ड देने को भी सोच रहे हैं पर मन्दोदरी ने रावण और उनके मन्त्रिमण्डल को सावधान कर दिया है—यदि बिभीषण की न्यायप्रियता के लिए उसे दण्डित किया जायगा तो वह आत्मदाह कर लेगी। जिस राष्ट्र में सत्य की मर्यादा नहीं, जिस राष्ट्र में विवेक को स्थान नहीं, जहाँ शुभ-हित की चिन्ता नहीं, जहाँ जनमत की उपेक्षा हो वह राष्ट्र अपने विनाश के लिए स्वयं चिन्ता तैयार कर रहा है। मन्दोदरी न होती तो लङ्का में जितने धर्म-न्याय के अनुगामी हैं वे फाँसी पर लटका

दिए जाते। मन्दोदरी के ही कारण रावण अब सीता के सम्मुख आने का
 दुस्साहस नहीं करता। मन्दोदरी इस द्वीप में नित्य प्रकाशित दीप हैं। उसे
 आप अपनी प्रतिकृति मानें। मन्दोदरी के दिव्य तेज के सम्मुख रावण-
 कुम्भकर्ण किसी की नहीं चलती। माँ, जिस देश में नारी की महिमा नहीं
 उसे रसातल में चला जाना चाहिए। नारी धरती माता है, धरती की भाँति
 वह पूज्य है वही तो जन्म देनेवाली है, उसका तिरस्कार मानवता पर कलङ्क
 है। इस कलङ्क से बचाने के लिए ही हम सब रावण के विपरीत हैं। सच
 पूछिए तो हमी रावण के सच्चे सहायक हैं, राष्ट्र के सच्चे रक्षक हैं पर न
 रावण को यह सत्य दिखाई पर रहा है और न उसके सलाहकारों को।
 रावण की तपस्या केवल दानव-बल बढ़ाने के लिए है समाजहित के लिए
 नहीं। माँ, क्या तप की यही परिभाषा है? शंकर, ऐसे तपस्वी पर क्यों
 कृपा करते हैं? शंकर दयालु हैं, आशुतोष हैं पर क्या यही अर्थ है कि वे
 अन्याय की वृद्धि में सहयोग दें? देवताओं की कल्पना किसने की? ये
 मनुष्य नहीं हैं! मनुष्य के पास विवेक है; इनके पास विचारशक्ति है
 ही नहीं। माँ, देवता हनुमान हैं जो जन-जागरण के लिए कटिबद्ध हैं, जो
 राष्ट्र-राष्ट्र में परस्पर मेल चाहते हैं, जो मानव की उदात्त भावनाओं को
 उत्कृष्ट बनाने के लिए तत्पर हैं। देवी आप हैं जिनके सांनिध्य में प्राणी
 पावनता की अनुभूति करता है। मैंने राम को नहीं देखा पर अनुमान से यह
 स्पष्ट है कि वे सूर्य की भाँति प्रकाश पुंज होंगे। उनकी कृपा-ज्योति का
 अंश ही तो हनुमान हैं। भारत राम से पूजनीय है। राम की संस्कृति की
 रक्षा मानव मात्र के हित में है—समता-सद्भाव-सहजीवन रामराज्य के
 अंग हैं।

बिभीषण-मन्दोदरी! मैं प्रसन्न हूँ तुम सबकी तर्क-बुद्धि से। जहाँ तर्क
 नहीं वहीं जड़ता है—तर्क सत्य को उद्घाटित करता है। तर्क का आशय है
 विश्लेषण जिस प्रकार से रासायनिक करता है। विश्लेषण से ही हम सत्य
 तक पहुँचते हैं अन्धविश्वास से नहीं। देवताओं की उपासना अन्धभक्ति है।

देव वह है जो आलोक-प्रकाशमय हो। प्रकाश तेज सत्कर्म से ही सम्भव है। देवता कर्म नहीं करते इसलिए उनमें आलोक कहाँ ? देव इस धरती पर ही ही सम्भव है परलोक में नहीं। कर्म ही कसौटी है दिव्यत्व की। देवों को विलासप्रिय बताया गया है—वे जन्ममृत्यु से परे हैं ऐसी स्थिति में मानव के लिए वे आदर्श नहीं। मानव का आदर्श मानव ही हो सकता है। राम मानव हैं देवता नहीं। हमें मानव बनना है; विलासी-जन्ममृत्युरहित देवता नहीं। जो द्वन्द्व से परे हैं वे क्या जानें सृष्टि और सृष्टि के विकास के मूलतत्त्व को ? वह कर्म क्या जानें ? वह आचरण क्या समझें ? हम जो हैं वही हमें जानना-पहचानना होगा। जिस प्रकार बीज में वृक्ष के फल के सारे गुण छिपे हैं—सूक्ष्मरूप में विद्यमान हैं उसी प्रकार मानव के गुण मनु की प्रत्येक सन्तान में हैं। मानव देवता न बने तभी उसका कल्याण है। वस्तुतः हम किसी दूसरे की पूजा नहीं करते हम अपनी ही पूजा करते हैं, अपनी भावनाओं की पूजा करते हैं। जिसमें राक्षसत्व है, विध्वंसात्मक प्रकृति है वह विनाशकारी भावों में जीने में सुख मानता है और जो रचनात्मक विचारों का प्रेमी है वह विचार की क्रियान्विति में सुख मानता है।

[विभीषण-मन्दोदरी साथ-साथ बोल उठते हैं—]

माँ, तुमने आज हमें दृष्टि दी, हमारे अन्धकार का विनाश किया। हमारी जड़ता दूर की। हम अब तक संकल्प-विकल्प से अभिभूत थे—कभी देवता की शरण लेते कभी राजा की। पर ये दोनों ही भ्रामक हैं। दोनों ही जनता के विश्वास का शोषण करते हैं। दोनों ही हमारी श्रद्धा का नाजायज लाभ उठाते हैं। दोनों ही अन्धभक्ति से प्रसन्न होते हैं। हम सब अब राम—मानव राम-के भक्त हैं जो हमारा है जो हमारे सहस्र द्वन्द्व से जूझना जानता है ? जो हमें आह्वान कर रहा है सत्यमार्ग पर चलने के लिए। जो विश्व-बंधुत्व के लिए घर-राज्य-परिवार छोड़कर निकल चुका है। राम का मानवत्व ही हमारा प्रकाश है। हम राम को सच्चे अर्थों में देव कह सकते हैं। जहाँ से आलोक मिले वही देव है। जहाँ से अन्धानुसरण का

सन्देश मिले वही अन्धकूप है। राम वही जो हम सबमें रमण कर रहा है ओ हमारे भीतर एक नित्य ज्योति के रूप में विराजमान है। राम-सीता भिन्न नहीं—आलोक एक ही है सर्वत्र। आलोक को न पहचानना अन्धत्व है, राक्षसत्व है। माँ, हमें आशीष दो आलोकित बने रहने के लिए। हम हनुमान के ऋणी हैं जो इस प्रकाशपुंज से परिचय करा सके।

×

×

×

हे मानव-संभृति के आलाकद्वय ! मानव, सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है— उसकी शक्ति अपरम्पार है, उसकी असीम क्षमता देखकर ही हमारा ध्यान किसी नियामक की ओर जाता है जो मानव का संयोजक-प्रेरक है। मूल की खोज ही जिज्ञासा है और यही ज्ञान है। जितनी दूर हम पहुँच पाते हैं उससे आगे भी कुछ है ऐसा मानना पड़ता है। इसी अनुमान के प्रमाण में ईश्वर की कल्पना है। ईश्वर वही है जो सबका स्रोत है, जिसे हम नहीं जानते पर जानना चाहते हैं। जो हमारे विकास के लिए हमें सारे उपादान देता है, जो हमारी भीतरी जीवन-शक्ति के अनुसार हमारी उन्नति, हमारे कल्याण के लिए सारे साधन एकत्र कर देता है। कभी-कभी हम नहीं समझ पाते कि ऐसा कैसे सम्भव हो सका तब हमारा ध्यान उस अदृश्य शक्ति की ओर बरबस खिंचता है। उसकी व्याख्या सम्भव नहीं। जिसे संयोग कहते हैं वह ईश्वरीय नियम है। संयोग की व्याख्या नहीं। पर संयोग अकारण होता है ऐसा मानना तर्कसंगत नहीं। राम का वनवास, राम का सुग्रीव-हनुमान से मिलन, रावण द्वारा मेरा हरण, लङ्का में हनुमान का आगमन और तुम धर्मभीरुओं से भेंट यह सब क्या संयोग मात्र है इसके पीछे उस नियन्ता का कोई उद्देश्य होगा ही।

ब्रिभीषण, तुम्हें राक्षस विश्वासघाती कहते हैं, और मन्दोदरी को पति की अवहेलना करनेवाली। अरे क्या यह धर्मसंगत है? प्रश्न यह है हमारा निकष क्या है अनुगमन का और अवहेलना का। सत्य का मार्ग सपाट नहीं है। सत्य रूढ़ि परम्परा से जब छिप जाता है तब उसका उद्धार ज्ञान-विज्ञान से करना अनिवार्य हो जाता है। है परम्परा को तोड़कर ही यह सम्भव है।

परम्परा का अन्वयानुसरण खतरे से खाली नहीं है। समय-चक्र के अनुसार परम्परा को तोड़ना उसका वहिष्कार करना न्यायपूर्ण है। शब्द की व्याख्या समाज के आलोक में करनी पड़ती है। पातिव्रत धर्म पति की अन्वभक्ति नहीं। पति की सेवा इसी में है कि वह कल्याण का पथिक बना रहे। गृहस्थी के पतिपत्नी दो चक्र हैं। दोनों में समन्वय तभी तक सम्भव है जब तक दोनों की जीवन-दृष्टि सत्य पर टिकी है। सत्य के छोड़ने पर यह सत्संग टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। पति-पत्नी सजीव साथी हैं, दोनों विचार से प्रेरित होते हैं। दोनों चेतन के स्वरूप हैं। लोग तो यह भी कहते हैं कि राम के कारण दशरथ की मृत्यु हुई, राम के कारण भरत को राज्य न मिला, राम के कारण अयोध्या उजड़ गई, राम के कारण लक्ष्मण को पत्नी छोड़कर वनवास के आना पड़ा आदि-आदि पर यह तो वे ही कह सकते हैं जो अनर्थ को ही देखते हैं, जो अनर्थ में अर्थ की खोज नहीं कर पाते, जो विनाश और निर्माण को अलग-अलग मानते हैं। राम कारण नहीं इन विध्वंसों के, राम कारण नहीं वनवास के। कारण है राजकीय परम्परा, कारण है वचन का दुरुपयोग। दशरथ ने कैकेयी को कष्ट के दिनों में दो वरदान देने के वचन दिए थे यह ठीक है पर क्या वरदान का उपयोग संहार-विनाश के लिए किया जाना चाहिए। दशरथ को अस्वीकार करना चाहिए था। परम्परा-रूढ़ि के वश वे विवेक से वंचित हो गए। दशरथ ने यदि साहस करके सम्यक् नीति अपनाई होती तो ये सारे काण्ड न होते। पर यह तो होना ही था। समाज का विकास ऐसे ही होता है कभी ऊँचा, कभी नीचा। विकास की गति सीधी नहीं—टेढ़ी-मेढ़ी होती है। राम ने परम्परा तोड़ी—बड़े पुत्र को ही राज्य मिले यह अपेक्षित नहीं। राज्य की रुचि जिसमें हो वह राज्य भोगे। राम राज्य के भूखे नहीं, न भरत ही। पर, विचारों की संकीर्णता ने मन्थरा-कैकेयी को कुबुद्धि से भर दिया। राम व्रत में सचमुच सुखी हैं भले ही मेरा अपहरण हो गया। उनका व्रत है समाज सेवा उसे वे पूरा कर रहे हैं। अतः, बिभीषण लोग क्या कहते हैं यह महत्त्वपूर्ण नहीं। जनता एक भीड़ है उसमें विचार की शक्ति नहीं

विचार तो व्यक्तिपरक है। गुरु ने राम को राज्य के लिए कहा, माँ कौशल्या ने कहा, पर राम ने अपने मनकी ही की। भरत को राज्य सँभालने के लिए किसने नहीं उपदेश दिया पर क्या वे अयोध्या में बँध सके। उन्होंने भी परम्परा से विद्रोह किया—माँ के वरदान का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं। वे माँ की बात से, दशरथ के वचन-निर्वाह से बँधे नहीं। किया वही जो उन्हें सम्यक् लगा। अतः, सत्याग्रही परम्परा का नहीं सत्य का आग्रही होता है। परम्परा के पोषकतत्त्व समय बीत जाने पर सड़ हो जाते हैं। जिस प्रकार मधुर मीठे में फफूँदी लग जाती है और फफूँदी बिभ्रैली होती है उसी प्रकार परम्परा दूषित हो जाती है, विकारग्रस्त हो जाती है उसमें सड़न आ जाती है और वह त्याज्य हो जाती है विकास के निमित्त। बिभीषण-मन्दोदरी, अपने भीतर देखना चाहिए, अपनी आत्मा के प्रकाश में निर्णय लेना चाहिए, सामाजिक रूढ़ियों-रीतियों-नीतियों के सहारे नहीं। सत्य स्वतन्त्र है।

महादेवी सीता, हमारे पास कोई विशेषण नहीं जिससे हम आप के ज्ञान को परिभाषित कर सकें। आप क्रान्ति हैं तभी तो पृथ्वी ने आज को जन्म देकर अपना सौभाग्य माना है। क्रान्ति इस धरती में ही छिपी है। सारे बीज इसी से पोषण तत्त्व प्राप्त करते हैं। धरती लंका की हो, भारत की हो एक ही है—लंका ने मन्दोदरी को दिया, आर्यावर्त ने सीता को दिया। सुग्रीव हनुमान अपना-अपना जनपद छोड़कर सत्य का साथ देने के लिए तत्पर हुए यह सब किसी बड़ी क्रान्ति के सूचक हैं। सुग्रीव के कारण बालि वध हुआ ऐसा भी लोग कहते हैं पर बालि का अनाचार उसका कारण है। सुग्रीव ने राम से मिलकर सत्य की रक्षा की—वानर जाति का मस्तक ऊँचा किया। बालि का विनाश तो निश्चित था ही, प्रलय के दिन तो उसे देखने ही थे। क्या सुग्रीव को विश्वासघाती कहना उचित होगा? यदि सुग्रीव राम के अनुयायी न बनते तो हनुमान कहाँ मिलते, राम लंका कैसे आ सकते? सीता की खोज तब क्या सम्भव थी? सीता की खोज

मानव शक्ति की खोज है—राम सुग्रीव-हनुमान-विभीषण-मन्दोदरी सब माध्यम हैं ।

आइए, हम लोग एक मिनट उस परमशक्ति का ध्यान करें जो हमारे बल का स्रोत है, जिससे हम आत्मज्योति का साक्षात्कार कर सकें ।

[सब ध्यानस्थ हैं । एक मिनट बाद आँख खुलने पर सीता जी सम्बोधित करती हैं—]

शांति में ही शक्ति है । जब हम चंचलता छोड़कर अपने भीतर भाँकते हैं तब प्रकाश मिलता है—बाहर का कोलाहल विक्षेप है, भीतर का शून्य समाधि है । जीवन के यही उभयपक्ष कर्म और भक्ति हैं । ज्ञान तो इनसे उत्पन्न दीप की लौ है जिसे विवेक की संज्ञा दी जा सकती है । विवेक की कसौटी सत्य है । सत्य की कसौटी आचरण है । आचरण के साथ ज्ञान का सामंजस्य ही जीवन-दृष्टि है । हमारा सोचने-समझने का ढंग, हमारी जीवन-दृष्टि हमारे जीवन-दर्शन पर निर्भर करती है । हम ऐसी दृष्टि पा सकें जो वैज्ञानिक हो, जो हमें सम्यक् निर्णय के योग्य बना सके, जो हममें तटस्थता के साथ विवेचन की प्रतिभा को विकसित कर सके । और जो हममें स्व और धर में एकता स्थापित करने की क्षमता उत्पन्न कर सके । अभेददृष्टि विरले ही तत्त्वज्ञानी को प्राप्त होती है । यह राजा-साधु-गुरु-मन्त्री में नहीं यह तो सन्त स्वभाव की देन है । सन्त सत्य का, आनंद का, प्रेम का, सर्वोदय का, सेनानी होता है । अब आप सभी जाइए और अपने-अपने दर्शन के अनुसार सेवा में लगिए ।

[हनुमान-विभीषण-मन्दोदरी आँख मूँदकर सश्रद्ध प्रणाम करते हुए और माँ-शक्ति का वरदहस्त से आशीष देते हुए । सब जाते-जाते सतृष्ण नेत्रों से शक्ति का दर्शन करते हुए चिंतन की स्थिति में—]

[हनुमान मन ही मन विचारों में डूबे हुए—]

जीवन कितना रसमय है यदि जीने की कला जा जाय । राक्षसों के बीच, विध्वंसकारी शक्तियों के बीच यह एक ज्योति कितनी प्रकाशपूर्ण है । इतने विरोधी परिवेश में इस प्रकार सर्जनात्मक जीवन जीना एक कला है । जल की भाँति निर्मल, सूर्य सदृश तेजमय, कमलवत् निर्लिप्त, कर्त्तव्य में सुदृढ़, परोपकार में तन्मय—ऐसी है राम की शक्ति—सीता । सीता माँ है, कल्याणी है, सर्वमंगला है । हमें जीवन-दृष्टि देनेवाली ज्योति है । अभेद-दर्शन ही तत्त्वज्ञान है । मुझे वानर की संज्ञा दी गई, विभीषण को राक्षस—यही भेद घृणा का मूल है । वन में रहने से ही कोई वानर कहलाया—क्या वह पशुवत् है—वन में सन्त भी रहते हैं, द्रष्टा भी रहते हैं, आरप्यक भी रहते हैं । हमारे मातृत्व को छीनकर क्षुद्र चित्तकों ने वानर की संज्ञा दे डाली, शास्त्रों का यह है न्याय ! शब्द के पीछे पड़कर हमने सुग्रीव-जामवन्त को बन्दर कह दिया—पर ये परोपकारी सेना किस मानव से कम है ! विभीषण क्या भयानक है—कैसा निर्मल हृदय, मानवत्व की पराकाष्ठा । लङ्का में रहने से कोई राक्षस कहलावे ऐसा कहाँ का न्याय है । रावण ने इसी भेद-दृष्टि से खीभकर सीता का हरण किया होगा । उसे क्या मालूम कि राम भेद को मिटाने के लिए वन-वन, देश-देश, गाँव-गाँव घूम रहे हैं, सबकी सुन रहे हैं, सबके साथ खा पी रहे हैं । यह समानता का व्यवहार ही उन्हें पूज्य बना रहा है । आने वाली पीढ़ी उन्हें अलौकिक मानकर उनकी पूजा करेगी । पर मूर्ति पूजा भी कितनी भेदकारक है—इसमें भी नाना सम्प्रदाय, नाना मत और इसीलिए आपसी झगड़े । पूजा विचारों की होनी चाहिए मूर्ति की नहीं । मूर्ति की पूजा करनेवाले बहुधा उस मूल शक्ति को विस्मृत कर बैठते हैं और बाह्य रूप के लिए भगड़ते हैं । मूर्ति पूजा अपने स्वार्थ के लिए, लोभ की पूर्ति के लिए, सम्पत्ति की इच्छा-पूर्ति के लिए, धनधान्य की अभिलाषा की पूर्णता के लिए लोग करते हैं । पर क्या यह उपासना है ? क्या यह सत्संग है ? क्या श्रेयस् का मार्ग यही है ? मूर्ति के प्रतीकत्व को छोड़कर हम पाषाण अथवा जड़वत् व्यवहार करते हैं । राम ! मुझे वह प्रकाश दो

जिसे आप जन-जन को देना चाहते हैं। मुझे न राज्य चाहिए, न भक्ति और न समृद्धि। सेवा का पवित्रतम रूप हमें दे, हे राम !

[विभीषण आत्म-चिंतन करते हुए मन ही मन—]

रावण और राम दोनों में 'रा', पर एक प्रकाश का दूसरा अन्धकार का, एक न्याय का दूसरा अन्याय का, एक धर्म का दूसरा अधर्म का, एक अभेद का दूसरा भेद का, एक दान का दूसरा लोभ का प्रतीक है। लक्ष्मण का अर्थ पाना है क्या लंका प्राप्ति-लाभ का ही नाम है, शुभ से इसका विरोध है। भारत भरण करता है, लंका शोषण। पर नाम-भेद से क्या ? शुभ और अशुभ, निर्माणात्मक और विध्वंसात्मक दो वृत्तियाँ हैं, राम रावण की कथा प्रतीकात्मक है। पर धन्य हैं राम जो प्रतीक हैं धर्म-ज्ञान-आलोक के, सीता उन्हीं की छाया हैं—कितनी उदार हैं माँ ! चाहे हनुमान हों चाहे मैं सबको मानव मानती हैं—मानव कहकर सम्बोधित करती हैं। उनके दर्शन मात्र से पाप भाग जाता है, विचारों में पवित्रता आ जाती है इसी का नाम है रामत्व। लोगों ने विभीषण कहकर मुझे भय का रूप दिया पर माँ सीता ने भय के स्थान पर निर्भयता भर दी मुझमें और मेरी सारी हीन भावना चली गई। मैं अब राक्षस नहीं मानव हूँ। यही बोध सीता-दर्शन का फल है। सीता धरती की भाँति शान्त, हल-रेखा की भाँति हृदय में गहरी रेखा बनानेवाली—तन-मन, सबको उर्वर बनानेवाली।

माँ सीते ! तुम्हारी करुणा से यह धरती पवित्र है, तुमने मानवरूप धारण किया मानवता को धन्य करने के लिए। तुम्हारी करुणा में सारा क्लृप्त भस्म हो जायगा।

[मन्दोदरी मन ही मन विचारों में लीन—]

नारी का पावनतम रूप ही तो है सीता। सीता, तुम्हारा जन्म धरती से हुआ—धरती के संकट को दूर करने के लिए। धरती को पाप का बोझ सह्य नहीं इसीलिए अपना हृदय फाड़कर तुमको उसने जन्म दिया है। माँ

के ऋण से तुम मुक्त हो रही हो। भरती के बोझ को हटाकर। राम यज्ञ के फल हैं—यज्ञ सेवा का प्रतीक है, सद्गुणों का प्रतीक है। जीवन को यज्ञ की तरह बनावें यही रामत्व है। राम-सीता—एक पुलिंग दूसरा स्त्रीलिंग पर इस भेद में अभेद। सारी सृष्टि द्वन्द्व की देन है—दो मिलकर एक का जन्म देते हैं इसी प्रकार सारे भेदत्व का अन्त एकत्व में। भारत और लंका के द्वयत्व को मिटाकर एक करना, इन्हें एक सूत्र में बाँधना यही तो तुम्हारा लक्ष्य है। आर्य और अनार्य, उत्तर और दक्षिण, गोरे और काले का भेद मिटाकर तुम मानवता की प्रतिष्ठा कर रही हो। तुम्हारा 'मिशन' पूरा हो और हम सब उसमें सहायक-सहयोगी बनें यही मेरी अभिलाषा है। मुझे विश्वास है तुम्हारी दीप्ति लंका के कोने-कोने में प्रदीप्त होगी और जन-जन में चेतना का संचार होगा। माँ, तुम अकेले इतना कर सकती हो तो हम सब मिलकर तो भरती को स्वर्ग बना सकते हैं। तुम यही तो चाहती हो कि यह परिवर्तन किसी चमत्कार से नहीं जन-जन के योगदान से सम्पन्न हो। धन्य हो माँ !

चौथा सोपान

[लंका में पदयात्रा करते हुए हनुमान-बिभीषण-मन्दोदरी; जन-जन का कष्ट समझते हुए, उनसे सम्पर्क करते हुए। समुद्र-तट से लौटते हुए मछुवाहों का परिवार इन तीनों को देखकर आश्चर्य से—]

अरे, यह तो लंकेश के भाई बिभीषण ! पर ये कोन ? अरे, ये मन्दोदरी पटरानी हैं। यहाँ कैसे ? इनके साथ प्रभात की अरुणिमा के प्रतिरूप—ये लाल-लाल गौर क्रीन ? ये तो इस देश के वासी नहीं, रंगरूप चेहरा सब भिन्न। रानी पैदल ! बिभीषण के पैरों में पदत्राण तक नहीं ! अरे, लंकेश ने इनको निष्कासित कर दिया है सीता का पक्ष लेने के कारण। कितना अन्धेर है इस नगरी में ! सुना है राम ने भरत के लिए राज्य छोड़ा, भरत ने राम के लिए राज्य छोड़ा यह भारत देश की कहानी है। और हमारे देश में एक भाई दूसरे भाई को प्राणदण्ड नहीं दे सका तो उसे निष्कासित कर दिया। मन्दोदरी की भारत सतीसाध्वी नारियों में गणना करता है पर यहाँ तो उसके पति ने उससे मुख मोड़ लिया है। कितना अन्धेर ! पर कौन बोल सकता है लंकेश के विरोध में—परनारी को हर लाया और पापाचार न कर पाने के कारण भाई को लात मारकर निकाल दिया, धर्मपत्नी को बेइज्जत करके चुपकर दिया।

[हनुमान, बिभीषण, मन्दोदरी परिवार वालों के निकट आकर—]

मन्दोदरी—तुम्हारी मछलियाँ कहाँ गईं ? तुम्हारी जीविका ! तुम्हारे जाल खाली हैं, टोकरें खाली हैं—अरे, तुम सब रो क्यों रहे हो ?

तुम्हें किसने सताया है ? कौन इतना निर्दयी है ? किसने मनुष्यता को ताक पर रख दिया है ? लंका में क्या यही अन्याय-अन्धेर ! बताओ न ।

[मछुवाहे की पत्नी घूँघट करती हुई—]

आप तो राजरानी हैं । मुझसे पूछ रही हैं । यह तो यहाँ रोज की बात है । हमारी जीविका का, हमारे बच्चों का ध्यान नहीं यहाँ के राजा को । जो देखो आ जाता है मछलियों को जबरदस्ती उठा ले जाता है—कभी कोई कहता है राजा ने मँगाया है, कोई कहता है मन्त्री के घर पहुँचाना है, कोई अपने को समुद्र का मालिक बताता है और निर्दयता से हमसे हमारा आहार छीनकर ले जाता है । ये बच्चे तीन दिन से बिना अन्न, बिना मछली, बिना दूध के हैं । देखो, इनके पेट पिचककर रीढ़ से चिपट गए हैं । हमारे आदमी ने सिपाही को रोका तो ऊपर से इन पर कोड़े बरसाये गए—क्या-क्या कहें ! पेट जल रहा है पर मुँह से आवाज नहीं निकाल सकते । दशमुख सुन ले तो न्याय की जगह निष्कासन दे ।

मन्दोदरी—मैं जानती हूँ लंका अन्धेर नगरी है । यहाँ राजा, प्रजा का पिता नहीं, रक्षक नहीं, भक्षक है । पर अन्याय का घड़ा भर चुका है । राम आने वाले हैं । सीता उन्हीं की पत्नी हैं । सीता शक्ति हैं उनके आने से लंका अब शक्ति-सम्पन्न होगी और लंका का अत्याचार-समाप्त होगा । देखो, ये हनुमान हैं राम दूत—जो राम के प्रताप से इतने बड़े समुद्र को एक ही कुदान में लाँध गए । यह लगता है चमत्कार पर यह सत्य है । यह आत्मबल है राम का, हनुमान का, सीता का, जो असंभव को संभव कर सकता है ।

हनुमान—लंका की देवियो ! लंका रावण की नहीं लंका तुम्हारी है । तुम सब इसके राजा हो, कर्णधार हो । तुम्हारे पौरुष पर ही लंका टिकी है । लंका का किसान अन्न देता है, तुम मछली देती हो, समुद्र रत्न देता है—लंकेवा का इसमें क्या योग है ? तुम स्वतन्त्र समझो, अपने को, कमजोर मत मानो । संकट का सामना वीरता से करो—दिन फिरेंगे-लौटेंगे, प्रजा का

राज्य होगा। तुम सब जिसे चाहोगे वही राज्य चलावेगा। जो तुम्हें न्याय दे सके, पेट भर भोजन दे सके, बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था कर सके वही प्रजापति बनेगा। जहाँ मन्दोदरी ऐसी सती-सावित्री है, जहाँ विभीषण जैसे सन्त हैं वहाँ न्याय का सूर्य उदय होगा। मैं राम से तुम्हारी संकट-गाथा कहूँगा। वे तुम्हारे लिए लंका आवेंगे और न्याय-धर्म-समानता का झण्डा फहरावेंगे। जिस प्रकार उत्तर से दक्षिण को गंगा बहती है, जिस प्रकार उत्तरी हिमालय से प्रकाश की किरण आती है, उसी प्रकार राम की कीर्ति की किरण लंका के कोने-कोने में फैलेगी। विभीषण अब राम के साथ हैं, न्याय के साथ हैं, सत्य के साथ हैं ये तुम्हारी तकलीफों को सुनेंगे। प्रसन्न हो, चिंता न करो, अपने बल को पहचानो—राक्षसत्व का नाश होगा मानवत्व का उदय। लंका सोने की है अब धर्म की होगी। राम की सेना में अंगद हैं—जिन्हें वृहस्पति का अवतार माना जाता है—विवेक के साथ ज्ञान होगा। राम की सेना में सभी अवतारी लोग हैं जो पृथ्वी से पाप को मिटावेंगे। राम, विभीषण, अंगद, मन्दोदरी सब एक से एक समाज-सेवक हैं। तुम्हें न्याय मिलेगा, भरण-पेट भोजन मिलेगा। तुम्हारे बच्चों को नंगा नहीं रहना होगा—उन्हें शिक्षा देकर महान् बनाया जायगा। ये बच्चे ही लंका के राजा बनेंगे।

विभीषण—मैं वचन देता हूँ—तुम्हारे लिए लड़ूँगा भले ही भाई रावण मुझे लातमारे—धर्म की स्थापना के लिए सब सहूँगा। अन्याय-अत्याचार का विरोध करूँगा। अब जाओ तुम सब, हम फिर मिलेंगे।

[हनुमान गम्भीर मुद्रा में विभीषण और मन्दोदरी से—]

इतना अन्याय ! इतनी क्रूरता ! इतना शोषण ! इसे मिटाना ही होगा। यह मानवता के लिए कलंक है। धर्म-युद्ध करना होगा। अधिकार, बिना युद्ध संभव नहीं। पर युद्ध अपने लिए नहीं समाज के उत्थान-सुख के लिए। इस धरती पर राम-राज्य की स्थापना करनी होगी—राम राज्य अर्थात्

जिसमें राजा कोई हो न्याय सबको मिले। राम को राजा नहीं बनना है प्रजा में से ही प्रजा की इच्छानुसार किसी को राज्य का संचालक बनाना है। सारी भक्ति, सारा ज्ञान एक मात्र इसी सत्य में है कि समाज से शोषण की सम्भासि हो। जब तक शोषण का बोलबाला है किसी मन्दिर में बैठकर ध्यान-ध्याना करना उचित नहीं। ज्ञान-ध्यान उत्तम है पर जब राष्ट्र-जल रखा हो, मानवता कराह रही हो तब एक मात्र धर्म है मानवत्व की रक्षा, मानव मूल्यों की रक्षा, यही युग धर्म है। वैदिक यज्ञ की आज अपेक्षा नहीं। कर्म काण्ड में समय शक्ति नष्ट करने से क्रांति न होगी। जनता को जगाना होगा उसे उसके अधिकार बताने होंगे। उसे समझाना होगा कि अन्याय मनुष्य द्वारा किया जाता है ईश्वर द्वारा नहीं। ईश्वर गरीब नहीं पैदा करता, गरीबी समाज की देन है। शोषण सम्पन्न करते हैं—जो समृद्ध है वह चाहता है कि गरीबी बने रहे ताकि शोषण किया जा सके।

[कुछ दूर चलने पर चौराहे पर टोकटा मिला—जमीन पर लिखा था राम और उनके प्रतीक रूप में एक कुम्हड़ा आधा कटा रखा था—कुम्हड़ा अपनी गोलाई के कारण शिर का प्रतिनिधित्व कर रहा था—आशय था कि राम की बलि की गई है—चारों ओर सिन्दूर, लाल लाल फूल, दीप आदि बिखरे पड़े थे]

हनुमान—यह क्या ! यहाँ राम क्यों लिखा है और उसके साथ यह सब क्या बिभीषण ! यह कैसी पूजा है राम की ? लंका में राम की पूजा चौराहे पर ? पर यहाँ तो कोई भक्त नहीं ? ये रक्तिम फूल ? राम सत्य के, सतोगुण के प्रतीक हैं। पवित्रता का चिह्न धवल-उज्ज्वल माना गया है। यह तो हिंसा-यातना-पीड़ा संहार के लक्षण हैं। मन्दोदरी ! क्या तुम समझ सकोगी इसका रहस्य ?

मन्दोदरी—महाराज ! यह अंध विश्वास ही जनता को ज्ञान से विमुख किए हैं। शिक्षा के अभाव में टोना-टोटका का अचलन है। राम की बलि

का यह प्रतीक है। रावण के अनुयायी उसके आदेश भर—संकेत पर राम को तंत्र मंत्र से मार रहे हैं। पर राम क्या इस टोटके से मरेंगे? यहाँ की स्त्रियाँ टोना-टोटका में निपुण हैं, उन्हें इसी में आस्था है। उनके पास ज्ञान की किरण नहीं पहुँचती। राष्ट्र को वैज्ञानिक दृष्टि देना होगा आर्यदूत !

विभीषण—स्वामी ! लंका शोषण-अज्ञान-हिंसा में जी रही है इसका उद्धार एक दिन में नहीं संभव है। आप आशीष दें ताकि ज्ञान की ज्योति कोने-कोने फैल सके—बच्चा-बच्चा शिक्षित हो सके। नारियों की शिक्षा की व्यवस्था होगी तभी समाज अंधकार से प्रकाश की ओर चल सकेगा। राम को जल्दी लावें न !

हनुमान—चिंता न करो, उत्तेजित न हो। हिंसा का उत्तर अहिंसा है। धैर्य रखो। हृदय परिवर्तन के लिए प्रयास करो नहीं, तो धर्म-युद्ध। जन-जन को तैयार करो परिवर्तन के लिए।

[और आगे बढ़ने पर बूढ़े बैल पर अनाज का बोझ लादे किसान—]

हनुमान—अरे भाई इस बूढ़े पर दया करो, इतना बोझ इसे असह्य है ! क्या जवान बैल, भैंसे, गधे नहीं हैं जिन पर बोझ ढोने का काम हो सके ! तुम्हारे खेत का यही इतना अन्न है ? तुम्हारे परिवार के ये प्राणी, ये बच्चे जो पीछे-पीछे लगे हैं क्या इससे भरपेट खाना पा सकेंगे ? ये नंगे बिना वस्त्र के भूखे बच्चे ! क्या यही राष्ट्र है ? गरीबी-शोषण का यह ताण्डव नृत्य ! और राजसभा में आसव-पान और नृत्य का बोलबाला। यहाँ के मन्त्रिगण क्या यह सब नहीं देख रहे हैं—परिवार के खाने के लिए इन्हें अन्न भी नहीं !

[किसान हाथ जोड़कर—]

सरकार, सारी पैदावार राजा और उसके कर्ता-धर्ता जबरदस्ती उठा

ले जाते हैं। कहते हैं—सब राजा का है। जमीन राजा की, अन्न राजा का।

हनुमान—और प्रजा किसकी ? प्रजा राजा की नहीं ! जब प्रजा को खाना न मिले। तब राजा भरपेट क्यों खाता है ? राजा प्रजा का पिता है उसे लोग ईश्वर मानते हैं। कैसा शास्त्र बनाया है शास्त्रज्ञों ने— राजा ईश्वर और प्रजा कंगाल ! क्या ईश्वर वही है जो प्रजा को कंगाल रूप में देख सके। ईश्वर को कलंकित कर दिया पंडितों ने। रावण पंडित है ! क्या यही पंडिताई है ? बिभीषण ! जिहाद करना होगा। गरीबी मिटानी होगी।

पशुओं की यह दशा क्यों ? इन्हें भी भरपेट चारा नहीं। सब ठठरीवाले पशु—आखिर युवा गाय-बैल व भैंस क्यों नहीं दिखाई रहे हैं ? यह सब उजाड़ देश, हरियाली नहीं—शस्यश्यामला भूमि नहीं !

बिभीषण—सारी प्रजा हिंसक है—हत्यारी है रावण के राज्य में पुष्ट जानवर भोज्य है यहाँ के निशिचरों का। जब पशु नहीं तो खेती कैसे ? आदमी को कच्चा खा जायँ ऐसे हैं यहाँ के भक्षक। इनमें उदारता नहीं ? दया नहीं, समत्व की भावना नहीं—पराए की पीड़ा ये क्या जानें ?

मन्दोदरी—रामदूत ! आप अपनी आँखों देख रहे हैं यहाँ का हिंसामय रूप। रावण को अभिमान है अपने अन्याय का—अत्याचार का। वह समझता है कि राम को तो हमारे राक्षस निगल जायँगे। देखें, इस धरती पर वे कैसे पैर रखते हैं। पर प्रजा ऊब चुकी है इस त्रासदी परिस्थिति से—उसका कोई नहीं। जब उन्हें भर पेट भोजन नहीं तो वे राजा के भक्त नहीं। भय-आतंक त्रास से सब मुक्ति चाहते हैं।

हनुमान—यही क्रान्ति के चिह्न हैं। गरीबी, असन्तोष बगावत ही

बुनियाद है। राम के लिए यही अनुकूल समय है। प्रजा, यदि राजा से तंग हो तो उसका साथ कैसे देगी ? असन्तोष जितना ही बढ़ेगा क्रान्ति उतनी ही आसान होगी।

विभीषण-मन्दोदरी ! समाज को नवजीवन देना है। जीवन कैसे जिना जाय यह सिखाना ही सच्ची सेवा है। एक मनुष्य के रहते दूसरा मनुष्य नारकीय जीवन बितावे यह शील-आचरण-नैतिकता के विरुद्ध है।...ये गन्दे सड़ान से भरे गड्ढे ! इनसे निकलती दुर्गन्ध ! यह मच्छरों का देश ! कैसे कोई स्वस्थ रह सकता है इस परिवेश में। पुरे पर्यावरण को शुद्ध करना होगा। मलेरिया, पीलिया, विषम ज्वर, यकृतदोष ये सब बीमारियाँ इसी गंदे जलवायु की देन हैं। यहाँ चिकित्सालय खोलने होंगे। टोना-टोटाका से जनता को उबार कर उसे वैज्ञानिक ढंग से स्वच्छता से रहने की आदत सिखानी होगी। पशुओं के रहने की स्वस्थ व्यवस्था करनी होगी। घी-दूध-दही बिना पूर्ण पोषण असम्भव है। मिर्च मसाले का देश इस गरीबी में जी रहा है ! जहाज से यातायात की सुविधा करनी आवश्यक है ताकि यहाँ की उपज अन्य देशों को सुविधापूर्वक जा सके और जो चीजें यहाँ सुलभ नहीं हैं वे दूसरे देशों से आयात की जा सकें। आदान-प्रदान से ही पूरी समष्टि सुखी हो सकती है। पर्यटन को बढ़ावा देना होगा ताकि यहाँ के लोग अन्यत्र जा सकें और अन्यत्र के यहाँ आ सकें। यह सारा काम प्रजा को शिक्षित कर उनके सहयोग से करना है। आप लोग अपनी पूरी शक्ति से नियोजन करके राष्ट्र के नवनिर्माण में जुट जायें। राम का आना लक्ष्मी का, जागरण का, उत्थान का आगमन है। अब आप सब जायें, कार्य करें। मैं माँ के पास जाऊँगा।

पाँचवाँ सोपान

[हनुमान सीता के समीप । उनकी अस्वस्थता देखकर मन ही मन—]

यह क्या ! माँ तो पड़ी हैं ! लगता है मच्छरों ने काटकर अपना विष पहुँचा दिया है । (स्पर्श करते हुए) अरे, माँ को तो तीव्र ज्वर है, साथ में कँपकँपी भी । यहाँ तो इन्हें पानी देनेवाला भी कोई नहीं है इनके पास ! कैसे समय काट रही हैं ! जिस देश में रोगी की सेवा की व्यवस्था न हो वहाँ का जीवन कितना कलुषित होगा । किसी को चिंता नहीं कि यह पुण्यात्मा कितने कष्ट में जी रही है । भगवान् ! क्या कष्ट उन्हीं के हिस्से में है जो दूसरों के कष्ट को दूर करने का बीड़ा उठाते हैं ? क्या सेवक को कष्ट सहने के लिए ही पैदा किया जाता है । जो परायामाल खाकर विषयभोग में लित है उसे ही सारे सुखों का अधिकार है ? कहाँ का न्याय है यह !

[सीता को संवोधित करते हुए हनुमान—]

माँ, उठो, पानी पी लो । मेरी माँ एक बार ऐसी ही पड़ गई थीं— ज्वर छोड़ता नहीं था । तब एक वैद्य ने बताया था नीम की छाल, घन्धिया, गुरिच, चिरायता, आँवला का काढ़ा गुड़ डालकर गरम-गरम दिन भर में तीन-चार बार पिलावेँ बहुत जल्द ज्वर चला जायगा । यह विषम ज्वर है थोड़ा जाड़ा लगकर आता है । यह कड़वी औषध हड्डी-हड्डी का ज्वर निकाल देगी—'कड़वी ओखद बिन पिए मिटे न तन का ताप ।' मैं अभी इसी अंगल से सब एकत्र करता हूँ । आप चिंता न करें । पर यहाँ तो वस्त्र नहीं

आप को ओढ़ाने के लिए—मैं अपनी चादर ऊपर से डालता हूँ। मैं समझ रहा हूँ आप के पोर-पोर में दर्द होगा यह क्वाथ सब ठीक कर देगा। नीबू मिल गया तो वह भी लाऊँगा—उसे उष्ण जल में बार-बार पिलाऊँगा, आप की प्यास शान्त हो जायगी और यह शरीर-आँत को शुद्ध कर देगा।

सीता—चिरंजीव हनुमान ! शरीर कष्ट भोगने के लिए ही है अतः इसकी चिंता न करो। इस कष्ट में भी सत्य से विचलित न होऊँ यही अभिलाषा है—कष्ट कसौटी है शील-आचरण का। काश ! आज राम होते। पर राम ही तो तुम हो—वही सेवाभाव, वही बड़ों का आदर, वही स्नेह ! तुम्हारी उपस्थिति राम की उपस्थिति है। ज्वर आया है चला जायगा। चिंतित न हो, मानव श्रेष्ठ !

[मन्दोदरी कुटिया में प्रवेश करती हुई—]

अरे माँ, पड़ी हैं ! इस लंका में सच्चाई, पवित्रता-सतीत्व की कीमत नहीं। हनुमान, हटिए मैं माँ का सर दबा देती हूँ—पीड़ा होती होगी। पर मेरा स्पर्श राक्षसिन का !

सीता—मन्दोदरी न कोई देवता है और न कोई राक्षस आचरण दिव्य हो तो देव, आचरण दूषित हो तो राक्षस। तुम सेवाकी, त्यागकी मूर्ति हो। तुम्हारे हाथों के स्पर्शमात्र से सारी पीड़ा चली जायगी—सती का आत्मतेज कुछ ऐसा हो होता है। सच्चे मन से की गई सेवा और शिष्टाचार की सेवा में आकाश-पाताल का अन्तर है। मन्दोदरी, लंका राक्षसों की नहीं तुम्हारे ऐसी देवियों की है। कोई देव अन्याय पर नहीं न्याय पर टिका रह सकता है। सत्य का तेज अपार शक्ति से युक्त होता है। तुम्हारे आगमन से ही मेरा हृदय आनन्द से भर गया। माँ की ममता है तुम्हारे हृदय में। तुम कल्याणी हो। मन्दोदरी ! कोई

जन्म से बुरा नहीं समाज बुरा बनाता है। समाज को परिशुद्ध करें तो सब स्वतः अच्छे संस्कार वाले बनेंगे। सिंघल दीप पद्मिनी नारियों के लिए प्रसिद्ध है—भारत में इनसे संबोधित अनेक लोक कथाएँ हैं। मन्दोदरी, रावण को मेरा समाचार न बताना—नहीं तो वे दुःखी होंगे। किसी को चिंता-दुःख में डालना मुझसे सहा नहीं जाता। रावण राक्षस नहीं मानव है—क्रोध-लोभ-अहंकार के वश वह राक्षस सा हो गया है। मनुष्य निरन्तर संवर्ष करता है अच्छी और बुरी वृत्तियों से। हमारा यह प्रयत्न होना चाहिए कि बुरे के भीतर अच्छे संस्कार का उदय हो—वह सत् की ओर मुड़े उस पर अंधकार अधिकार न करने पावे। मन्दोदरी, लंका से, रावण से, किसी से हमें घृणा नहीं करनी है। घृणा करेंगे तो उनके भीतर हमारे लिए घृणा-उपेक्षा उत्पन्न होगी। हमारा सनेह ही उनको स्निग्ध बनाएगा, उनका मन दया-ममता की ओर सहज ही मुड़ेगा। हमारे विचारों-भावों की प्रतिक्रिया वैसी ही होगी जैसे हमारे भाव होंगे। क्रोध, क्रोध को भड़काता है और प्रेम, प्रेम को प्रदीप्त करता है। मन्दोदरी-हनुमान, विश्राम करो मैं ठीक हूँ। मेरा जन्म धरती से हुआ है—मैं धैर्य की बनी हूँ। धीरज की परीक्षा कष्ट में ही होती है। धैर्य आत्मबल देता है कष्टों-कठिनाइयों से मुकाबला करने का।

[हनुमान कुटिया से बाहर निकलकर मन ही मन—]

यह माँ का तेज है जिससे प्रभावित होकर मन्दोदरी यहाँ स्वयं आई हैं। पवित्रता-प्यार में बड़ी शक्ति है। हृदय की निर्मलता में अजीब आकर्षण है। यह कार्य शस्त्र से सम्भव नहीं—शुद्ध संस्कारों के उदय होने से ही सम्भव है। अहिंसक क्रान्ति यही है। राम को यह समाचार कैसे दूँ ? दूँ कि न दूँ ? माँ अस्वस्थ हैं यह सुनते ही वे प्रयाण कर देंगे। पर उन्हें चिंता में डालकर क्या लाभ ? उनके आने के पूर्व यहाँ क्रान्ति की लहर फैल जानी चाहिए। उनके आने से युद्ध छिड़ जायगा क्योंकि रावण इसे

सहन न कर सकेगा । अभी तो वह कुम्भकर्ण की भाँति सोया हुआ है अपने अहंकार में—वह समझता है कि सारे देवता उसके वश में हैं, कोई उसका बाल बाँका नहीं कर सकता । राम-रावण का युद्ध रुके और रावण सन्मार्ग पर आ जाय इससे अच्छा और कुछ नहीं । मन्दोदरी का इस क्रान्ति में सबसे बड़ा योगदान होगा ।

अच्छा, समाधि में राम से आज बात करूँगा । उन्हें यहाँ की दशा से अवगत कराऊँगा । उन्हें सीता की अस्वस्थता की सूचना दूँगा पर उसमें मुख्य संकेत होगा मन्दोदरी की सेवा का, सीता का कष्ट तो चला ही जायगा । राम का लक्ष्य है सामाजिक क्रान्ति—उसे पूरा करना है । उन्हें बताऊँगा विभीषण-मन्दोदरी की हृदय-निर्मलता, सेवा-भावना की बात, उन्हें बताऊँगा यहाँ की जनता के कष्टों, उन्हें बताऊँगा यहाँ की रहन-सहन परम्परा जंबू दीप और सिंहलदीप की एकता की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करूँगा । यहाँ का वन-वैभव, यहाँ का रत्नभंडार, यहाँ का ऐश्वर्य बताते हुए यहाँ की जनता की गरीबी का भी संकेत करूँगा । कितनी गहरी खाई है राजा-प्रजा में । आर्थिक-सामाजिक क्रान्ति राजनीतिक क्रान्ति को स्वतः लायेगी । यहाँ की प्रजा भारत की ओर प्रकाश के लिए ताक रही है—वह जानती है कि नव जागरण का संदेश, अध्यात्म चेतना का संदेश—समुद्र पार से ही आवेगा ।

[स्वप्न में हनुमान लक्ष्मण से मिलते हुए—]

लक्ष्मण—हनुमान, भाभी की रक्षा के लिए मैंने जो रेखा खींची थी वह रावण नहीं डाँक सका—लक्ष्मण-रेखा लंका में भी उनके साथ है, कोई दुष्ट उन्हें स्पर्श करने का साहस नहीं कर सकता । मैंने यदि जीवन में सत्य का, धर्म का पालन किया है तो लक्ष्मण-रेखा सत्य की रेखा है । सत्य को आँच नहीं । हनुमान ! तुम्हारा संदेश मिलते ही लक्ष्मण का बाण सीधे लंकापति

के पास पहुँचेगा। हनुमान! तुम हमारे हो। भाभी ने, साथ रहकर भी, ममता-मोह के वश राम के बल-पराक्रम को न समझा। सत्यसंध राम साधारण व्यक्ति नहीं—सत्य ही उनका कवच है। अयोध्या का राज्य छोड़ने वाला ऐतिहासिक नहीं अलौकिक पुरुष है। भारत के इतिहास में यह एक अद्वितीय घटना है। वस्तुतः राम की प्रेरणा से ही कैकेयी ने दशरथ से राम के लिए बनवास माँगा और भरत के लिए राज्य। राम चाहते थे जनजन के बीच रहकर जनता के भावों को समझना और जनता-जनार्दन की सेवा करना। राम राज्य में बँधकर अपनी शक्ति का प्रसार नहीं कर सकते थे। भारत के कोने-कोने में राम को जाना था—पड़ोसी देशों तक पहुँचना था। भारत की कीर्ति को सर्वत्र फैलाना था। भारत को संसार में एक आदर्श बनाना था। दशरथ की मृत्यु के बिना यह क्रांति संभव न थी। पिता जी को जो कुछ करना था कर चुके थे उन्हें तो चला जाना ही था। काल-चक्र सबसे प्रबल है। राम जानते थे कि माँ कौशल्या उन्हें घर से बाहर नहीं जाने देंगी दया-मया-मोह के वश। इसीलिए यह वरदान माध्यम बना। भरत की प्रकृति साधु सदृश है। मैं तो रण का प्रेमी क्षत्री हूँ। राम जानते थे कि घर से बाहर लक्ष्मण ही अधिक सहायक होगा इसलिए मेरी माँ को उन्होंने प्रेरित किया मुझे अपने साथ भेजने के लिए। राम गार्हस्थ्य जीवन में रहकर सच्चे कर्मयोगी होना चाहते थे—वे संन्यासी नहीं। उन्हें मानवमात्र के सम्मुख गृहस्थी की महिमा रखनी थी। संसार का पालन गृहस्थ ही करता है संन्यासी नहीं। दया-करुणा-सेवा-सन्तोष-वैर्य-त्याग-परोपकार-सहिष्णुता सारे गुण गृहस्थी में ही विकसित होते हैं। नारी त्याज्य नहीं। नारी शक्ति है, पुरुष की प्रेरिका है। नारी बंधन भी है और मुक्ति भी। नारी के अनन्त रूप हैं। माँ कौशल्या मातृत्व की, स्नेह की साक्षात् देवी हैं, मेरी माँ कर्त्तव्य के अग्ने मोह-मया नहीं जानती, कैकेयी मृदु होते हुए भी कठोर हैं—निर्माण और विध्वंस दोनों की पराकाष्ठा है। राम का बनवास सीता के लिए परीक्षा थी। सीता घर रहकर माँ कौशल्या के साथ सारी सुख-सुविधा का भोग कर सकती थीं पर; यह सारी घटना उनके लिए अग्नि-परीक्षा थी। उन्हें चुनाव

करना था भोग और त्याग में, राज्य और वन में । सीता ने परम्परा तोड़ी । घर की चाहारदीवारी से निकल पड़ी—इतिहास में यह अपने ढङ्ग की एक ही मिसाल है । नारी घर की ही नहीं, वह बाहर भी उसी शक्ति से काम कर सकती है । वह पुरुष की सेविका मात्र नहीं वह स्वतन्त्र शक्ति रखती है । और नारी-उत्थान नारी द्वारा ही संभव है । वे राम की इच्छा को जानती थीं—क्रांति राम के जीवन का लक्ष्य था । सीता यदि उसमें साथ न देती तो नारी के लिए कलंक था । राम चाहते थे कि पुरुष और नारी साथ-साथ मिलकर सम्पूर्ण जागरण करें । तभी सर्वोदय होगा । नारी के बिना सक्रिय सहयोग के क्रांति संभव ही नहीं—नारी धुरी है सारी सृष्टि की । पुरुष को पौरुष नारी ने ही दिया है । परिवार-समाज-सृष्टि सब का आधार नारी है । नारी यदि घर में ही बँधी रहेगी तो समाज का आधा भाग उपेक्षित रहेगा । राम ने वनवास लिया, ब्रह्मचर्य का पालन किया, सेवा का व्रत लिया समाज-कल्याण और लोक-उत्थान के लिए । राम, इसीलिए, अवतार हैं धर्म-कर्म-ज्ञान के और सीता शक्ति हैं । शक्ति आगे हो तभी सफलता संभव है । लंका में सीता का प्रवेश साभिप्राय है ।

[हनुमान राम का साक्षात्कार करते हुए स्वप्न में—]

राम—हनुमान, मैं देख रहा हूँ तुम किस प्रकार लंका में जनजागरण कर रहे हो । मैं दूर होते हुए भी निकट हूँ । सीता की शक्ति सक्रिय है सबको रचनात्मक विचारों की ओर ले जाने के लिए । सीता मेरे बिना अवश्य कष्ट में होगी पर सामाजिक कार्य बिना तप-ऋण-सहिष्णुता के संभव ही नहीं । यही सेवा का सुख है । यह श्रेयस् मार्ग है, इसमें भौतिक सुख नहीं आध्यात्मिक आनन्द है । हनुमान, सीता के माध्यम से वहाँ नारी जागरण होगा—नारी के माध्यम से पुरुष चैतन्य होगा । परम्परा के विरोध में सफलता तभी संभव है जब नारी क्रांति करे—रूढ़ियाँ-परम्पराओं का पोषण नारी द्वारा होता है । नारी सुरक्षा चाहती है अपने परिवार की, अपने बच्चों की, अपने पुरुष की इसीलिए वह तरह-तरह के उपचार करती रहती है । वह अंधानु-

संरक्षण करती है ममता-मोहवश । अंधविश्वास नारी के माध्यम से ही टिका हुआ है । संसार में सुख है तो कष्ट भी कम नहीं, उन कष्टों से बचने के लिए नारी वृक्ष-पूजा, देव-पूजा, दैत्य-पूजा, चैत्य-पूजा, तन्त्र-मन्त्र, टोना-टोटका करती है । वह कष्टों से उबरने के लिए भूत-प्रेत सब के प्रति विश्वास करती है । अपने बच्चों की, कुटुम्ब की रक्षा के लिए वह सब कुछ कर सकती है । मेरी माँ, मेरे लिए कितनी मनोतियाँ मानती थीं—कितने देवी-देवताओं की पूजा करतीं कितनी दान-दक्षिणा देतीं । जरा सा मैं अस्वस्थ हुआ कि वे भाड़ने-फुकाने के लिए किसी के पास पहुँच जातीं किसी की नजर मुझे न लगे मेरे माथे पर काली बिंदी लगतीं । वे चाहती कि मेरे राम अच्छे रहें उन्हें कुछ भी करना पड़े । एक न एक व्रत करतीं, मेरे लिए दान देतीं—सूर्य की, चंद्र की, गंगा मैया की पूजा की मानता आए दिन करतीं । कोई भी ज्योतिषी मिल जाय उससे मेरे ग्रह की शान्ति की बात पूछतीं—दानपुण्य करतीं—अन्नदान, तुल्लादान, द्रव्यदान सब करतीं । उनका सारा जीवन मेरे लिए ही था । यह है नारी का मातृत्व । उसकी इस कोमल भावना का लाभ उठाकर उसे समाज के प्रति ममतामयी बनाना होगा । वह जगत् की माँ है—उसे यह बौध कराना होगा ।

हनुमान—माँ ने लंका में जो क्रांति की है वह आप सोच नहीं सकते । मन्दोदरी तो उनकी भक्त हो गई है—माँ का एक-एक शब्द उसके लिए आप्त वाक्य है । उसने व्रत ले रखा है कि जब तक लंकेश सीता को वापस करने का निश्चय न कर लेगा मैं उसके साथ सत्याग्रह करूँगी । वह तो सीता की सेवा में समर्पित है । कल की बात बताऊँ—माँ थोड़ी अस्वस्थ थीं मन्दोदरी ने उसके सर में तेल लगाकर उनके बालों को भाड़ा, कंधी किया, उनके हाथ-पैर दबाए । वह तो उनकी सेवा को ईश्वर की सेवा मानती है । सुबह-शाम जब देखिए वह उन्हीं के पास । आप की चर्चा करती है, आप का कुशल पूछती है—कहती है राम कैसे हैं ? कहती है माँ, तुम्हारी करुणा-दया-ममता के स्रोत यदि राम हैं तो वे तो परम दिव्य होंगे । एक बार उनके दर्शन करा दें । फिर

कहती है माँ क्या तुम मेरे लिए ही लंका आई हो—लंका अब राक्षसों की नहीं मनुष्यों की होगी । घर-घर में पवित्रता होगी । नर-नारी मिलकर लंका का पुनरुत्थान करेंगे । कहती-कहती वह हर्ष-उल्लास से भूम उठती है । माँ सीता से अधिक मन्दोदरी आपको स्मरण करती है—आपकी प्रतीक्षा में है वह । लक्ष्मण भरत-शत्रुघ्न सबकी बात पूछती है । कहती है वह अयोध्या कैसी है जहाँ राम का जन्म हुआ । वह धरती कैसी है जहाँ सीता ने जन्म लिया । वे पिता कितने पुण्यात्मा रहे होंगे जिन्होंने सीता को जन्म दिया । मुझसे कहती है हनुमान रामदूत, मुझे ले चलो भारत की प्रदक्षिणा कराने । मैं जंगल के उन स्थानों को देखना चाहूँगी जहाँ राम निवास करते हैं, जहाँ से लंकेश ने सीता का हरण किया । जहाँ सुग्रीव से मित्रता हुई । वह राम-कथा में आनन्द लेती है । प्रभु मैं क्या-क्या बताऊँ ।

राम—सीता तो कभी अस्वस्थ नहीं होती थी और न कभी उसे मैंने चिन्ताग्रस्त ही देखा—सदा वही स्मिति, वही स्निग्धता, वही साहस । वही तो प्रेरिका रही है पूरे वनवास में । नारी के महत्त्व को मैंने वनवास में जाना । राजा के घर नारी कुछ भी हो उसके कर्तव्य का विकास अवरुद्ध रहता है । नित्य मर्यादा में रहने से, सतत सीमाओं में बँधे रहने से व्यक्तित्व का विकास स्वाभाविक नहीं । वहाँ उसे कहाँ अवसर है स्वतन्त्र चिंतन का और स्वतन्त्रता के साथ विचारों के कार्यान्वयन का । विचार जब कार्य में परिवर्तित नहीं होते तब वे मर जाते हैं—फल होता है व्यक्ति के व्यक्तित्व का विनाश । विकास के लिए छूट अनिवार्य है । भय किसी प्रकार का हो चाहे शील-मर्यादा का ही हो बंधन है और प्रगति में बाधक है । प्रगति में परम्परा को तोड़ना पड़ता है—परम्परा समय के अनुकूल नहीं होती । रुढ़ि निर्जीव-जड़ बना देती है । विकास के लिए सतत चेतनता, सतत तर्क की अपेक्षा है; वह राजपरिवारों में नसीब नहीं वहाँ जीवन शास्त्र के अनुसार होता है—और कोई भी शास्त्र सर्वकालीन नहीं हो सकता । परिवर्तन प्रकृति का नियम है, परम्परा परिवर्तन के विरोध में है । पर परम्परा का बन्धन भी

हितकर है यदि उसका अंकुश एक सीमा तक ही हो। सीम और असीम, मर्यादा और स्वतन्त्रता, पराधीनता और स्वाधीनता के बीच मध्यम मार्ग अपनाना ही श्रेयस्कर है। शास्त्र के साथ वितन का मेल हो तभी शास्त्र का विकास संभव है। आदिकालीन सम्यता-संस्कृति आज के सन्दर्भ में नहीं ठहर सकती। हाँ, हमें अपने विकास की प्रक्रिया का बोध होना चाहिए—एक सोपान दूसरे के लिए सहायक हो तभी उसकी सार्थकता है। हनुमान, तुम वन में रहकर भी अच्छे नागरिक हो। जिसका ध्यान समाज के विकास-उत्थान की ओर रहे वही नागरिक है—नगर में रहने से कोई नागरिक नहीं। अच्छा नागरिक स्व और पर के बीच सेतु है।

हनुमान—मेरे स्वामी, मेरे गुरु, मेरे पथप्रदर्शक, सब तुम्हारे सत्संग का प्रभाव है। मेरी गिनती पशुओं में की जाती रही है पर तुम्हारे सौजन्य ने हमें श्रेष्ठता दी, हममें आत्मबल उत्पन्न किया। हमारे जीवन में क्रांति आ गई। भगवान्, माँ के पास लंका में कैसे बहुत कुछ सीखा है। विरोधी परिस्थितियों में कैसे रहा जाता है यह वहीं जान पाया, हिंसकों के बीच अहिंसक क्रांति कैसे संभव है यह माँ के निकट ही बोधगम्य हो सका। जीवन में व्यवहार पक्ष का सर्वाधिक महत्त्व है। किसी भी जीवन-दर्शन की कसौटी व्यवहार जगत् ही है। सिद्धान्त वे ही खरे हैं जो सामाजिक जीवन में खरे उतरें। बिभीषण-मन्दोदरी माँ के सम्पर्क में रामत्व से पूर्ण हैं। उनकी जीवन दृष्टि अब राक्षसी नहीं मानवी है। वे करुणा-दया सहानुभूति को महत्त्व दे रहे हैं, हिंसा-शोषण-लोभ से दूर होते जा रहे हैं। उन्होंने वह अनुभव कर लिया है कि विचारों का बल ही सबसे बड़ा बल है। और यह बल सत्य के आग्रह से ही, सत्याचरण से ही, परोपकार की भावना से ही विकसित हो सकता है। वे अब राक्षसी भाव का नहीं मानवी भावों का—सतोगुणी भावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मेरे राम, यही क्रान्ति तो आप चाहते हैं—इसलिए राज्य छोड़कर दर-दर घूम रहे हैं जिन्दगी की जोखिम उठाकर। साहस-वैर्य-कर्मठता कोई आप से सीखे। आज इसी की अपेक्षा है समग्र क्रान्ति के लिए, नयी जीवन-दृष्टि के लिए, संसार के कल्याण के लिए।

लक्ष्मण की सत्य की रेखा लंका के लिए शेषनाग सदृश भयाव्रह है, वह माँ सीता के पास कैसे आने का साहस कर सकता है ? लंकापति रावण सीता को हर लाया पर मर्यादा का उल्लंघन वह नहीं कर सका । वह पंडित है । वह मिथ्याचरण से घबड़ाता है । उस समय वह आवेश में, मदांध होकर, सीता को उठा लाया पर उसके मनमें अवश्य ही द्वन्द्व छिड़ा होगा । मन्दोदरी ने, बिभीषण ने उसके इस कर्म का बराबर विरोध किया पर जो व्यक्ति गलती कर बैठता है वह उसी की रक्षा में अपना गौरव समझता है । भूल का स्वीकार करना संत ही के लिए संभव है । रावण ने बिभीषण के विरोध करने पर उसे लात मारकर बहिष्कृत कर दिया और मन्दोदरी के समझाने पर उससे अप्रसन्न रहने लगा । पर मैं समझ रहा हूँ उसका हृदय, भीतर ही भीतर खोल रहा है—जिसकी पत्नी उसके अनुकूल न हो प्रत्युत विरोध में ही उसे शांति कैसे संभव है ? अन्याय का बल तो होता नहीं । मान्यवर, रावण नैतिकता की दृष्टि से मर चुका है—प्रजा असंतुष्ट है । सारा नारीवर्ग उसके इस निन्द्य कार्य से रूठ गया है—सर्वत्र उसकी भर्त्सना हो रही है । ऐसी है यहाँ की आन्तरिक स्थिति । रावण भले ही वीर है पर मनोबल मर चुका है अब तो वह अपने हठ की रक्षा में है । आप के बाण की अपेक्षा नहीं, यदि आप आज्ञा दें तो दो चार वानर ही यहाँ विध्वंस कर देंगे, पूरी वानर सेना की अपेक्षा नहीं—पर मैं युद्ध को बचाना चाहता हूँ । माँ का नैतिक बल लंका में क्रांति कर रहा है । रावण से त्रस्त होने और भुखमरी के कारण जनता त्राहि-त्राहि कर रही है । यहाँ आदर है केवल मन्दोदरी-बिभीषण का और ये समग्र क्रांति के लिए तैयार हैं ।

[हनुमान की आँखें खुल जाती हैं—स्वप्न टूट जाता है । वे अपने को स्फूर्तिमय पाते हैं—एक नयी चेतनता से युक्त । मन ही मन—]

लक्ष्मण से स्वप्न में मिलकर कितनी प्रसन्नता है—कितना सन्तोष है ।

सेवक-स्वामि का सम्बन्ध देखना हो तो लक्ष्मण और राम को देखें— लक्ष्मण सीता के लिए राम से कम चिंतित नहीं और लंका पर चढ़ाई के लिए वे आतुर हैं। पर युद्ध से जनता को क्या मिलेगा ? जनक्रांति जनता के बीच से उत्पन्न होनी चाहिए। जो स्थिति लंका की है उसमें जनक्रांति के बीज हैं। रोग-गरीबी-बेकारी और अन्याय से जनता को भरपेट भोजन नहीं—ऐसी प्रजा राजा का समर्थन कैसे कर सकती है ? माँ सीता की भावना है कि यहाँ की जनता को जागरूक बनाया जाय—घृणा से नहीं चेतनता के प्रसार से। घृणा युद्ध के लिए हितकर है पर अंततः यह शांति में सहायक नहीं। घृणा का विष एक बार व्याप्त होने पर हक नहीं सकता। जनता को स्नेह-प्यार नहीं मिला है उसे वही देना चाहिए। इसके लिए बिभीषण-मन्दोदरी का सहयोग मिल रहा है। ये दोनों ही लंका राष्ट्र की उन्नति चाहते हैं और चाहते हैं इसकी कीर्ति—संसार में इसे अभ्युदय और श्रेयस् दोनों में ही अद्वितीय स्थान मिले। बिभीषण में राज्य का लोभ नहीं—राष्ट्र की उन्नति का लोभ है। रावण और उसके अनुयायी भले ही उसे राष्ट्रद्रोही कहें पर राष्ट्र की सुरक्षा ही उसका लक्ष्य है। बिभीषण मानते हैं कोई भी भ्रष्टा-चरण के बल पर सर ऊँचा नहीं कर सकता। बिभीषण जनता की समोन्नति के लिए संघर्ष कर रहे हैं अपने लिए नहीं। रावण का राज्य समाप्त होना ही चाहिए और जनता का प्रतिनिधि ही राज्य संभाले तभी क्रांति सही अर्थों में होगी।

मैं रामदूत हूँ। मुझे वही करना है जिसके राम प्रतीक हैं। राम मनुष्यत्व का, मानव मूल्यों का नाम है। युद्ध कितना भी धर्मयुक्त हो विध्वंस का ही रूप है। युद्ध के अनन्तर कितनी महिलाओं का सिन्दूर धुल जाता है, कितने दुधमुँहें बच्चे बिना माँ के हो जाते हैं, कितने विकलांग हो जाते हैं, कितने कराह-कराह कर मरते हैं। युद्ध के घायलों को पूछनेवाला कोई नहीं—विजेता अपनी खुशी मनाता है शत्रु के विध्वंस पर! क्या धर्मयुद्ध का परिणाम यही है ? युद्ध छिड़ने के पहले स्वयंसेवकों का एक जत्था ऐसा तैयार करना चाहिए जो घायलों की सेवा में ही सुख का अनुभव करे। रामत्व की रक्षा

सभी संभव है जब समाज का पीड़ित-दुःखी वर्ग सच्ची सहानुभूति प्राप्त करे । बंदीगृह की व्यवस्था देखने पर तो लगता है कि मनुष्य पशु से भी बदतर समझा जाता है । सैनिक किसी भी पक्ष का हो वह अनुशासन में बँधा है वह अपना उत्तरदायित्व पूरा करता है—बंदी सैनिक को वही सुविधा मिलती चाहिए जो किसी भी नागरिक को मिलती हो । मारना—हिंसा करना—मृत्युदण्ड देना आसान है किसी को जीवन देना कठिन । युद्ध तो प्राणलेवा है, प्राणदाता नहीं । जो किसी को जीवन नहीं दे सकता उसे प्राण लेने का अधिकार कैसे ? सब कह रहे हैं युद्ध बिना क्रांति संभव नहीं, न्याय मिलनेवाला नहीं, पर युद्ध की विभीषिका को समझना जरूरी है । इतिहास बताता है युद्ध नए-नए प्रश्नों को उत्पन्न करता है । युद्ध न संस्कृति और न साहित्य, किसी की परवाह नहीं करता—युद्ध में मनुष्य बलि चढ़ जाता है । दो राजाओं-शासकों में, दो संप्रदायों में जब युद्ध छिड़ता है तब नैतिकता को ताक पर रख दिया जाता है । अतः युद्ध-युद्ध का नारा लगने से पूर्व इन समस्याओं पर ध्यान देना होगा । अभी चलता हूँ माँ के पास । उनके सम्यक् चिंतन से संभव है कुछ प्रकाश मिले ।

[हनुमान माँ सीता के सामीप्य नतमस्तक प्रणाम करते हुए—]

माँ, रात में मैंने लक्ष्मण का दर्शन किया—उन्होंने कहा सीता लंका में भी लक्ष्मण-रेखा के अन्दर है—किसी दुष्ट का साहस नहीं उसे स्पर्श करने का, उसके निकट आने का । जो पवित्र है, निर्मल है, जिसका हृदय संत सदृश उदार है, जो अपने लिए नहीं दूसरों के हित की सोचता है वही भाभी का सामीप्य प्राप्त कर सकता है । राम की शक्ति लंका में क्रांति करेगी । मेरे हनुमान, जल्दी सूचना दो मेरे बाण व्याकुल हैं तरकस से छूटकर लंकेश के पास पहुँचने के लिए । राम से अधिक मैं चिंतित हूँ और शीघ्र से शीघ्र उनके दर्शन के लिए लंका पहुँचना चाहता है । लक्ष्मण ने कहा है पूरी वानर सेना संनद्ध है प्रयाण के लिए पर बिना हनुमान की सम्मति के कोई कदम नहीं उठाया जायगा—हनुमान की राय सीता की राय होगी । युद्ध छेड़ने के पहले

माभी की विचार-धारा से अवगत होना चाहिए। माँ, मैं इसी चिंतन में हूँ कि क्या युद्ध ही एक मार्ग है अब ? मन्दोदरी-बिभीषण ऐसों का इस युद्ध में क्या होगा ? वे सभी सामाजिक न्याय चाहते हैं—यह न्याय कैसे संभव होगा ? यहाँ की जनता जी दुर्दशा है वह आप देख रही हैं। उनकी स्थिति क्या युद्ध से ठीक हो सकेगी। युद्ध से क्या राक्षसत्व के स्थान पर मानवत्व विकसित हो सकेगा ? मानव मूल्यों की रक्षा, जिसके लिए राम वनवास कर रहे हैं युद्ध से हो सकेगी ? माँ, इस मानसिक द्वन्द्व से मैं जूझ रहा हूँ। स्वामी राम से भी साक्षात्कार हुआ स्वप्न में—वे कितने आतुर हैं तुम्हारे लिए।

[सीता हनुमान की समस्या का समाधान करती हुई—]

अज्ञाना-सुत ! युद्ध और शांति दो विरोधी शब्द हैं—यह प्रश्न अदिकाल से ही है कि युद्ध कितना अनिवार्य और उपादेय है मनुष्य की शांति के लिए—युद्ध क्या अभ्युदय और श्रेयस् को ला सकता है ? युद्ध शब्द के साथ पक्ष और विपक्ष का द्वन्द्व सहज ही बोध हो जाता है। युद्ध शत्रुत्व का फल है। शत्रुता के साथ वैर भावना और घृणा का होना स्वाभाविक है। घृणा विनाशकारी भाव है। युद्ध में विजेता होने के लिए न्याय-अन्याय में भेद नहीं करना होता—एक ही लक्ष्य होता है शत्रु का विनाश। छल-छद्म सब कुछ युद्ध में जायज है—शत्रु को नीचा दिखाने के लिए, उसे परास्त करने के लिए। शत्रु की दुर्बलताओं का लाभ उठाया जाता है और ऐसे दाँव की ताक में रहना होता है जिससे शत्रु पर अनुकूल समय में आक्रमण किया जा सके। दया-माया-ममता ये भाव युद्ध के विरोध में हैं। अतः, युद्ध की कल्पना मात्र भय का संचार करती है।

हनुमान, जितने भी युद्ध हुए हैं वे किसी क्रांति को लक्ष्य बनाकर नहीं बल्कि किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए ही—युद्ध व्यक्ति-व्यक्ति में, राष्ट्र-राष्ट्र में, दो वर्गों में होने का आशय है स्वार्थ की लड़ाई—किसका पक्ष

न्याय का है यह कहना कठिन हो जाता है। पर, कभी-कभी संहार-विनाश-प्रलय भी सृष्टि वा नव निर्माण के लिए अनिवार्य हो जाता है। मृत्यु अवसर देता है सर्जन का। युद्ध के औचित्य का निर्णय सामाजिक संदर्भ में करना चाहिए। युद्ध हिंसा प्रधान होने पर भी अहिंसक तत्त्व लिए हुए है यदि यह समाज में नवजीवन के संचार के लिए हो। शोषण हिंसा है। शोषण के विरुद्ध किए जाने वाले युद्ध अहिंसात्मक कहे जा सकते हैं क्योंकि इनका लक्ष्य कल्याण अथवा जनता की पीड़ा को मिटाना है। शोषित का उद्धार कभी-कभी बिना युद्ध संभव ही नहीं होता है।

हनुमान, राम रावण-युद्ध स्वार्थ के लिए नहीं परमार्थ के लिए है। रावण का विनाश अर्थात् सामाजिक शोषण का विनाश, अधर्म का विनाश। आसुरी वृत्ति का उन्मूलन सीधे-सादे ढङ्ग से संभव नहीं। सत्य और न्याय का पक्ष ग्रहण करनेवालों को एक जुट होकर असत्य के विरोध में खड़ा होना चाहिए। इस प्रकार का जिहाद—धर्म युद्ध—सामाजिक हित में है।

पवनपुत्र ! युद्ध विनाशकारी है इसलिए इसके समर्थन में कुछ भी नहीं कहा जा सकता पर दृष्टता को निर्मूल करने के लिए भयंकर उपाय करना ही पड़ता है। लक्ष्मण मानते हैं कि इस धरती से पाप का बोझ बिना युद्ध के हटाना संभव नहीं। उन्होंने वन में रहकर यह अनुभव किया है कि अत्याचारी अकारण ही दूसरों को कष्ट देते हैं ऐसी स्थिति में उनका सर्वनाश करना ही श्रेयस्कर है। समाज में जो समर्थ है, जो शक्तियुक्त है उसकी शक्ति का उपयोग परसुख, समाज-कल्याण के लिए हो तो उसका अभिन्नन्दन करना चाहिए। सबल यदि दुर्बल की रक्षा में अपने बल का प्रयोग करता है तो वह धर्म है। जटायु ने रावण से युद्ध किया उसके अनाचार के विरोध में इसलिए ऐसा युद्ध धार्मिक है। राम को राक्षसों के संहार में जिसने भी सहयोग दिया है वे सभी धर्मयुद्ध के समर्थक कहे जायेंगे। राम के साथ छल-कपट करनेवाले की सजा मृत्यु-दण्ड ही है।

युद्ध विपक्ष से अथवा विपरीत विचारों से लड़ने का नाम है। युद्ध कहाँ नहीं है ? भीतर भी बाहर भी। हमारे भीतर शुभ और अशुभ, हितकर और लाभकर, परमार्थ और स्वार्थ का युद्ध निरन्तर चलता है। जिसने अपनी आत्मा को बेच दिया है वह जघन्य काम करने में हिचकता नहीं, वह व्यक्ति का, राष्ट्र का हित दाँव पर लगा सकता है। राष्ट्रद्रोही को राष्ट्र नहीं बद-पैसे का लोभ होता है। वह अपनी अन्तरात्मा को इतना कुचल डालता है कि उसे शुभ विचारों से घृणा हो जाती है। ऐसे राष्ट्रविरोधियों को यदि प्राणदण्ड की सजा दी जाय तो भी कम है। ऐसे प्राणदण्ड को हिंसा की संज्ञा देना ठीक नहीं।

व्यक्तिगत स्तर पर एक उदाहरण लें—रावण और मन्दोदरी का। दोनों के बीच न्याय और अन्याय का युद्ध छिड़ा हुआ है। रावण ने आतंक-अनाचार का सहारा लेकर लंका-राष्ट्र की दुर्गति कर रखी है—मन्दोदरी का विरोध विचारों और कार्यों का विरोध है। मन्दोदरी बल प्रयोग नहीं कर रही है, सत्याग्रह से—वह अनन्त बार लंकेश को समझा चुकी है। यदि लंकापति अपने क्रो नहीं सुधारते तो वह राष्ट्र में नवजागरण पैदाकर रावण के साथ अहिंसात्मक युद्ध ठानेगी। ऐसा युद्ध सर्वथा शुभ है।

बिभीषण को लें—लङ्कापति ने भाई को तिरस्कृत कर न्याय-आचरण की अवहेलना की है। यही अवहेलना बिभीषण और रावण के बीच संघर्ष का कारण है। बिभीषण राष्ट्र को व्यक्ति से ऊपर मानकर भाई का विपक्षी हो गया है। पर रावण बिभीषण को शत्रु समझ रहा है और उसने उसे लातमार कर निकाल दिया है। सत्य के लिए संघर्ष प्रशंसनीय है—समाज और सामाजिक मूल्यों की रक्षा के लिए किया गया युद्ध सर्वथा उचित है। हनुमान ! युद्ध-संघर्ष जीवन के अनिवार्य अंग है—इनके औचित्य को सामाजिक सन्दर्भ से जोड़कर देखना चाहिए। अस्त्र बुरा नहीं है—बात उसके प्रयोग की है। क्षत्री, धर्म की रक्षा के लिए अस्त्र उठाता है।

हनुमान—माँ, मेरा संदेह नष्ट हुआ—मेरा दिमाग साफ हो गया। युद्ध माध्यम है किसी लक्ष्य का; यदि लक्ष्य उचित और पारमार्थिक है तो उसके लिए अस्त्र-शस्त्र भी प्रयोग में लाए जा सकते हैं। विचार-कर्म को सर्वोपरि स्थान देना होगा। जिस राष्ट्र में सुविचारों की, सत्कर्मों की अवहेलना होगी वह पतन करेगा ही—राष्ट्र की रक्षा का अर्थ है उसके कल्याण की रक्षा। विरोध बुरा नहीं, अन्याय को पोषित करना बुरा है—विचार-स्वातंत्र्य का अर्थ है जिन विचारों-कर्मों से जन-जन का हित न हो, राष्ट्र का मङ्गल न हो, समाज का मस्तक ऊँचा न हो उनका विरोध करना। विभीषण और मन्दोदरी का पक्ष सर्वथा न्याय का है। ये विश्वासघाती नहीं—जासूस नहीं—बल्कि ये राष्ट्र के हित में राजा से बगावत कर रहे हैं। समझाना-बुझाना जब काम नहीं करता तो युद्ध का सहारा लेना पड़ता है—लक्ष्मण समझ रहे हैं कि लंका में न व्यक्ति को न्याय मिल रहा है और न समाज को। राष्ट्र की रक्षा के लिए राष्ट्र में जो भी सतो गुणी हों, जो राष्ट्रप्रेमी हों उनका संगठन कर राष्ट्र का उद्धार करना चाहिए। लङ्का भारत का पड़ोसी जनपद है। लङ्का का प्रभाव भारत पर और भारत का प्रभाव लङ्का पर स्वाभाविक है—जब पड़ोसी देश अम्युदय और श्रेयस् के मार्ग पर चलेगा तभी हमारा कल्याण होगा। दुराचारी-व्यभिचारी देश पड़ोसी देश के लिए उतना ही बड़ा खतरा है जितना बड़ा खतरा किसी कुकर्मी पड़ोसी से होता है। विचार अच्छे हों या बुरे छूत की तरह फैलते हैं; अतः, बुरे कर्मों-विचारों-संस्कारों को निर्मूल करना धर्म है।

छठवाँ सोपान

[मन्दोदरी पति की सेवा करती हुई—]

पतिदेव ! दम्पत्य जीवन संसार में अप्रतिम है। यह एकत्व की, अद्वयत्व की आदर्श स्थिति है। आप पंडित हैं—सीता को राम से अलग कर आपने किसका कल्याण किया है ? अभेद में भेद, एकता में भिन्नता, मिलन में विच्छेद की स्थिति पैदा करना न सामाजिक न्याय है और न धार्मिक। राजनीति में सब प्रकार के छल-कपट चल सकते हैं पर किसी की पत्नी का अपहरण क्या जघन्य अपराध नहीं है ? जैसी मैं आप की वैसी ही सीता राम की। राम-रावण के वैसनस्य में पत्नी के अपहरण का क्या स्थान है ? मुझे आप एक क्षण के लिए भी दूर नहीं देखना चाहते उसी प्रकार राम भी सीता को दूर कैसे देख सकेंगे—उनके हृदय की वेदना का आप अनुमान करें ! सीता की वेदना का अनुमान करने पर मेरा हृदय फटने लगता है। आप सोचें, विचार करें, मानवता के नाम पर वही करें जो उचित है।

रावण—मन्दे ! तुम जिस नीति की, न्याय की, धर्म की बात कर रही हो उसका अब समय नहीं है। मैंने जो कुछ किया वह न पूछो। अब तो उस कृत्य को समुचित ही मानना पड़ेगा। मेरा राम का विरोध नहीं पर जब उन्होंने राक्षसों को नाश करने का संकल्प कर लिया है तो उनका विरोध तो करना ही है। राम का सारे राक्षसों के प्रति घृणाभाव कौन सा देवत्व है ? राम अपने को अहिंसक-नैतिक-समाजसेवी बतलाते हैं पर उनके काम हिंसा-अपराध से पूर्ण हैं। उन्होंने वालि का बब किया अपने स्वार्थ के लिए, अब वे बिभीषण को फोड़ना चाहते हैं—उनकी दृष्टि सोने की लकड़

धर है। पिता की हत्या का पाप उनके सर पर है।—कैकेयी को माँ कहते
 थे पर उसके पुत्र भरत को राज्य न करने दिया। लक्ष्मण को फोड़कर अपने
 साथ कर लिया ताकि भरत अकेले पड़ जायँ। राम ने न गुरु की मानी, न माँ
 की मानी, न पिता की मानी। पत्नी को लेकर घर से अलग हो गए—यह
 कौन सा सामाजिक न्याय है? ऐसे राम को अच्छी तरह मजा चखाऊँगा।
 तुम चुप रहो। पत्नी की तरह रहो—सेवा तुम्हारा धर्म है बहस करना नहीं।
 राजनीति पुरुषों के लिए है—युद्ध पुरुषों के लिए है। नारी गृहस्थी देखे
 बस उसकी सीमा यही है। नारी घर की शोभा है—बाहरी दुनिया से उसका
 कोई सरोकार नहीं। तुमने यदि राम की, सीता की वकालत की तो अच्छा
 नहीं बनेगा। जिस प्रकार बिभीषण को लातमारकर निकाल दिया है उसी
 प्रकार तुमको भी—अब नीति-धर्म न समझाना अपना भला चाहो तो। मैं
 जानता हूँ तुम सीता के पास जाती हो, दिनरात घर से गायब रहती हो—
 बड़ी बनी हो नारीयों की सेवा करने वाली—सब को न्याय दिलानेवाली—
 तुम नारी हो, नारी।

मन्दोदरी—पतिदेव! नारी घर की, बाहर की, संसार की श्री है। बिना
 उसके संसृति की कल्पना ही संभव नहीं। जिस शक्ति के आप उपासक हैं
 वह—नारी ही है। जिस शिव के आप भक्त हैं क्या वे पवित्री के बिना
 शक्ति सम्पन्न हैं? राम सीता को भारतवासी सीता-राम कहकर स्मरण
 करते हैं; कृष्णराधा को राधे-कृष्ण कहकर जपते हैं। उषा भी नारी है जो
 संसार को आलोक देती है। नदी भी नारी है जो जीवन देती है। नारी
 अर्द्धाङ्गिनी है उसके बिना पुरुष लंगड़ा है—वह अकेले कुछ भी नहीं कर
 सकता पंडितवर! नारी-निन्दा करके आप शक्ति को प्रसन्न ही कर सकते।
 सोचिए—अच्छाई को देखिए। नारी सर्वसंगला है, वह श्रद्धा है, वह
 कल्याणी है, वह माँ है, वह शक्ति है, वह वीरप्रसू है। नारी पर हाथ चलाना,
 नारी पर कुदृष्टि रखना नीच कृत्य हैं—उसका अपहरण तो बलात्कार है।
 आप पंडित होकर भी अज्ञानियों जैसी बातें करते हैं। रामको, सीताको

मानव मूल्यों की कसीटी पर कसें। आप तथ्य को तोड़-मरोड़कर रखने में निपुण हैं। मैं राम-सीता के बारे से आप से अधिक जानती हूँ। राम ने पिता का वचन माना—राज्य छोड़ा भाई के लिए, वनवास लिया सेवा के लिए। राम के नाम से भारत का गौरव बढ़ता है, क्यों? इसलिए कि राम ने मान-वता का पक्ष लेकर धर्म की स्थापना की है—उनका विरोध यदि है तो कुकर्म से, अन्याय से। मैं सीता के पास जाती हूँ—यह नारी-धर्म का पालन है! एक नारी की यातना समग्र नारी की यातना है—एक नारी के प्रति अन्याय समग्र नारी के प्रति अन्याय है। मैं आपकी पत्नी हूँ—आपकी सेविका हूँ साथ ही एक नारी भी हूँ। नारी समाज का प्रमुख अंग है—उसके सामाजिक उत्तरदायित्व हैं। नारी-समाज की अवहेलना अथवा उसकी प्रताड़ना में कैसे देख सकती हूँ। मेरा विरोध आप से पति के नाते नहीं एक सामाजिक प्राणी के नाते है। मैं अर्द्धांगिनी हूँ पर क्या आप मेरी बातों को मानने को तैयार हैं? मैं आप के साथ हूँ पर आप मुझे अबला समझकर तिरस्कृत करते हैं—मैं सामाजिक न्याय के लिए आप से विरोध कर सकती हूँ। नैतिकता की रक्षा करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य-कर्म है।

पुरुषों की कठोरता ने नारी को दासी बना रखा है; उनको जीने का अधिकार नहीं, स्वतन्त्र ढङ्ग से सोचने का अधिकार नहीं, किसी सामाजिक समस्या में स्वतन्त्र विचार रखने का अधिकार नहीं—पुरुष मनमाना करता है उसकी इच्छा बुरी हो या अच्छी किसी पर नारी को बोलने का अधिकार नहीं, केवल यज्ञ के समय बगल बैठा लेने से क्या वह सचमुच अर्द्धाङ्गिनी है? नारी को भी चेतनता नहीं—वह नहीं जानती कि समाज में उसका भी कोई महत्त्व है, उसकी भी की आवाज है। कोई पुरुष किसी नारी पर अत्याचार करता है और दूसरी नारी सब कुछ देखती हुई बोलती नहीं—क्या वह सचमुच अबला है! क्या वह एक सामान्य जीव से भी बदतर है! कोई भी जीव संकट में संघर्ष करता है पर यह सती नारी सब चुपचाप सहती है। क्या यही शक्ति का रूप है? पतिदेव! आप ही सोचें, अपनी अन्तरात्मा

की आवाज सुनें, क्या आप अपने अपराध को नहीं जानते ? क्या आप उसके लिए प्रायश्चित्त नहीं कर सकते ? क्या आप अपनी भूल स्वीकारने में गौरव नहीं मानते ? सत्य स्वीकारने में हिचक कैसी ? क्या राजनीति हृदय को कलुषित करने के लिए ही बनी है ? क्या राजनीति आवरण है सारे पापाचार का । आप से आग्रह है कि सीता को सौंप दें रामदूत हनुमान को—इसी में कल्याण है, हठ न करें । समझोते के साथ जीना सीखें—युद्ध की आग न भड़कावें । अभी तो विभीषण अकेले हैं फिर तो अनेक विभीषण विद्रोह करेंगे आप की राजनीति से—लड्डा आप का साथ न देगी । प्रजा को आप कब तक आतंक से चुप रखेंगे । आपका ध्यान प्रजा के कष्टों की ओर नहीं, उनके पोषण-पालन की आप को चिंता नहीं—फिर प्रजा आपका साथ क्यों दे ? आप अपनी वासनाओं की परितृप्ति के लिए सब प्रकार का अंधेर कर सकते हैं पर प्रजा के हित के लिए आप को फुरसत नहीं । मैं यह खरी-खरी बातों इसलिए कह रही हूँ कि आप विनाश के मार्ग पर चलते जा रहे हैं—इस रास्ते पर चलकर न आपका, न राज्य का कल्याण है । सोचें, समझ-बूझकर निर्णय लें ।

रावण—हनुमान को सौंप दूँ—हनुमान कौन ? रामदूत ? कैसे समुद्र पार कर गया ? यह मनुष्य नहीं हो सकता । समुद्र पार करना किसी इन्सान के बस का नहीं । निश्चय ही यह कोई देव है—शंकर-शक्ति का रूप है अन्यथा यह संभव ही नहीं कि कोई और उस पार से इस पार आ सके । राम यदि मनुष्य हैं तो उनके भी बूते का नहीं समुद्र पार करना—लड्डा द्वीप सुरक्षित है । चिंता न करो मंदा ! मैं जो चाहूँगा प्रजा वही करेगी—यहाँ किसी की भी दाल न गलेगी । तुम राम का पक्ष मेरे घर में रहकर, मेरी रोटी खाकर ले रही हो । मालूम होता है विभीषण ने तुम्हें भड़काया है—देखूँगा उस दुष्ट को । वह भाई नहीं शत्रु है उसके साथ शत्रु का बरताव करना होगा—राम से अधिक उसको पीड़ित करना होगा । मन्दोदरी ! समझ लो कोई भी

हो जो राम के पक्ष का समर्थन करेगा उसका नाश पहले, राम का बाद में ।
 रावण किसी को नहीं छोड़ेगा—नर हो या नारी ।

मन्दोदरी—प्राणनाथ, अन्याय सर पर चढ़कर बोलता है । इस आग से कोई बच नहीं सकता । आप राजा हो, महाराजा हो, चक्रवर्ती हो अन्याय का घड़ा भर जाने पर अन्यायी का विनाश निश्चित है । राम का पक्ष न्याय का पक्ष है । हनुमान से संधि करके सीता को लौटा दें इसी में लज्जा की, आपकी भलाई है । घमंड चूर-चूर हो जाता है अत्याचारी का । अनाचार-अन्याय न प्रजा सह सकती है और न परिवार का कोई प्राणी । मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ । मेरा धर्म है आपको समय-समय अच्छी सलाह देना । आपकी सुरक्षा में मेरी रक्षा है । पर आप यदि अपना हठ नहीं छोड़ते, यदि आप को कुत्सित कामों के करने में ही आनन्द है, यदि आप का अहं इसी में तुष्ट है तो आप करें जो आपकी मर्जी; पर यह अन्तिम चेतावनी है नारी पर हाथ न उठावें—अबला को न संतावें, असहाय की आह भस्मकर देगी लज्जा को प्राणनाथ ! भगवान आपको सद्बुद्धि दे । अच्छा मैं चलूँ ।

रावण—चलने के पहले परसाद लेती जाओ—चरण प्रहार करते हुए—
 औरत की जात चली है न्याय की दोहाई देने—बड़ी ज्ञानी है घरफोरी कहीं की—केश पकड़कर खींचते हुए—चल, जा निकल घर से बिभीषण की तरह तू भी, जा राम के पास, जा हनुमान की सेवा में । तेरा पति मैं नहीं, राक्षसिन ! मेरी रोटियों पर पली और मुझसे ही बगावत । जा लज्जा से, नहीं तो इसी समुद्र में डुबवा दूँगा, पता भी नहीं चलेगा । नारी पाप की खान है—नारी का विश्वास करना अधोगति को पहुँचना है । नारी नर का संहार करनेवाली है—कुलटा कहीं की ! जा, देखूँ तुझे कौन शरण देता है ? मैं जानता कि तू इतनी नीच होगी तो तेरे साथ गाँठ न जोड़ता । पंडितों ने घोखा दिया । मैं कोई नहीं तुम्हारा, चुड़ैल कहीं की, जा निकल । घसीटकर बाहर करता हुआ—तेरे ही कारण सीता अब तक बची है नहीं तो—। मेरे शास्त्र में पाप ऐसी कोई चीज नहीं ।

मन्दोदरी—मैं जाती हूँ पर एक बार फिर सचेत कर रही हूँ कि हठ छोड़कर धर्म की शरण में जाओ, सत्य की शरण में जाओ। राम सत्य है, हनुमान सत्य है, सीता सत्य है। हे लङ्कापति, जब लक्ष्मण-रेखा तुम नहीं पारकर सके तो तुम उस सीता-पार्वती को स्पर्श करने का साहस रखते हो ? सीता अग्नि-ज्वाला है, वह पृथिवी की देन है। यदि तुमने अनाचार का हाथ उठाया तो इसी घरती में तुम्हें समा जाना होगा। माँ धरित्री अपनी बेटी का अपमान नहीं सह सकेंगी। पास न फटकना माँ सीता के। सीता के कारण लङ्का अभी तक बची है नहीं तो लक्ष्मण का बाण आज तक आप के राजमुकुट को गिरा देता। हनुमान तुम्हारे भाग्य से आए हैं संधि कर लो—रामको शत्रु नहीं हितैषी मानो, सीता को नारी नहीं माँ मानो—कल्याण पथ यही है। जिस लिंग के तुम उपासक हो उसमें शिव-शक्ति का अद्वैतभाव माना गया है। अतः सीता-राम, नारी-नर दो नहीं एक हैं। नारी को नर से अलग करना शिवभक्ति नहीं पाप है। जलो पाप की ज्वाला में। मेरी बात स्वीकार नहीं तो चली, अकरुण पति !

[रावण आप ही आप—]

मन्दोदरी गई, बिभीषण तो गया ही था, क्या होनेवाला है ? बिभीषण को लातमार कर निकाला इसका पछतावा बराबर बना है पर हठ जो न करावे—आज मन्दोदरी को क्रोध में—आवेश में—घसीटकर बाहर कर दिया। है कोई ईश्वर जो मुझे ऐसे दुर्दिन में समझा सके ? कहाँ है वह भगवान् जो मेरी नियति का चक्र चला रहा है। जो अपने हितैषी थे, जिन्होंने जीवन भर मेरी सेवा की, मुझे भद्र विचारों से प्रेरित करते रहे जो उन्हीं को मोह-मद की आँधी में शत्रु मान रहा हूँ। क्या कहूँ ? मेरी अविद्या मुझे छोड़ नहीं रही है—मैं चाहता हूँ सीता को देकर संधि कर लूँ पर जो कुकर्म कर चुका उसकी लज्जा रखने का मोह मेरा पीछा किए हुए है। मेरी पंडिताई किस काम की ? मेरा हृदय अन्तर्द्वन्द्व से विकल है। मेरा अब कौत है इस घर में—इस लङ्का में ? पर फिर भी साहस नहीं भूल स्वीकार करने का।

मैं समझता हूँ जीवन जीना आसान है पर सत्पथ पर चलने की दृढ़ता असंभव
 सी है। बुद्धि पर कितना भी दबाव डाल रहा हूँ पर वह मुझे पथभ्रष्ट करने
 पर उतारू है। लगता है नियंता कोई और है। किसकी शरण जाऊँ जो मुझे
 ऐसा आत्मबल दे कि मैं अपने को इन तामसी वृत्तियों से मुक्त कर सकूँ। मैं
 भगवान को नहीं मानता—हाँ शंकर का भक्त हूँ, पर शंकर क्यों नहीं मेरी
 सहायता कर रहे हैं—क्यों नहीं सन्मार्ग की ज्योति प्रकाशित कर रहे हैं।
 लगता है देवता भी विवश हैं नियति के आगे—है कोई इनसे ऊपर—क्या
 उसी का ब्रह्म कहते हैं। वह अदृश्य शक्ति कौन है? मैं समर्पित करता हूँ
 अपने को उसी शक्ति को—और कोई उपाय नहीं है। सर पर हाथ रखकर
 —विधाता साहस दो सत्कर्म के लिए। मंदोदरी का पातिव्रत मेरा बल था
 आज वह भी छिन गया, हाय! मैं मंद बुद्धि का रावण। प्रजा का विरोध,
 प्रकृति का विरोध, भाई का विरोध, पत्नी का विरोध, एक साथ सब का
 विरोध मैं अकेला। क्रोध-लौभ-मोह-ईर्ष्या से मैं बरबाद हो गया।
 जो रचनात्मक विचारवाले साथी थे वे छोड़ कर चल दिए अब इन
 विध्वंसात्मक भावों से कैसे बच सकता हूँ? मंदे! आ, मैंने भूल की तुम्हें
 घर से निकालने में, बिभीषण लौट आओ—मैंने भूल की तुम्हें लात मार
 मार कर भगा देने में। कैसे कहूँ मैं अपराधी हूँ—यही तो नहीं स्वीकार
 किया जाता खुले शब्दों में। कहाँ से साहस बटोर कर लाऊँ? है कोई
 ईश्वर जो मुझे ज्ञान दे, प्रकाश दे। मैं दशमुख—मेरी दसों इन्द्रियाँ मुझे
 धोखा दे रही हैं। इन्होंने ही मुझसे अनाचार कराया है। मेरी बुद्धि इनको
 अपने बस में नहीं रख सकी, इनकी खुली छूट ही बरबादी का कारण है।
 सीता! सचमुच तुम शक्ति ही क्या? तुम्हारे स्तमीप जाने का मुझमें साहस
 नहीं, दूर से भी तुमको देख कर भयभीत ही उठता हूँ—उस वन में जो मेरा
 प्रिय आरामस्थल था अब जाने से घबड़ाता हूँ। तुम्हारे पास तो जो जाता
 है वह तुम्हारा ही जाता है—मंदोदरी तुम्हारी सेविका हो गई, बिभीषण
 तुम्हारा भक्त। पर मैं तो तुम्हारे निकट पहुँचने का उपक्रम भी नहीं कर
 सकता। सीते, यदि मैं ऐसा जानता तो तुम्हें—। जटायु ने मुझे मार

गिराया था क्यों नहीं मैं मर गया ? वही अच्छी गति होती । अब क्या करूँ ? क्या हनुमान से अपनी दुर्बलताओं को कहूँ ? क्या बिभीषण को वापस बुलाकर अपने हृदय-पुकार को सुनाऊँ ? मन्दोदरी ही सहायक हो सकती है । पर किस मुहँ से उसको बुलाऊँ ? किसे भेजूँ ? पता नहीं कहाँ चली गई ? द्योगी वह सीता की सेवा में—पर वहाँ कौन जा सकता है ? हाय—किससे कहूँ अपनी आधि-व्याधि ? कौन है मेरा ?.....अरे कहाँ बंध गया ? इतना कायर हो गया मैं ? जो किया है उसी को पूरा करूँगा भले ही युद्ध करना पड़े, भले ही लंका से हाथ धोना पड़े । मेरा हठ रहेगा चाहे सब कुछ स्वाहा हो ।नहीं....नहीं, इससे शांति नहीं मिलेगी । यह श्रेयस् का मार्ग नहीं । किसी मंत्री को बुलाऊँ जो बिभीषण को लौटा ले—एक बार उससे क्षमा माँग सकता तो बड़ी शांति मिलती । शान्ति हठ में नहीं—सचाई पर चलने में है । बिभीषण—आओ, जहाँ भी हो मेरी अंतरात्मा की पुकार सुनो ! तुम संत हो । मैं सच्चे हृदय से तुम्हें पुकार रहा हूँ मेरे भाई, आओ—तुम्हारे आने से मंदा भी लौट आवेगी—बिभीषण, मैं उद्विग्न हूँ—मैं मानसिक रूप से खोखला हूँ । मेरी मति भ्रष्ट है । तुम्हारा अपमान करना आत्मा का अपमान करना है । हाय ! मेरी बहादुरी कहाँ गई ? है कोई सत्य जो सच्चाई-पवित्रता से ही संतुष्ट होती है । बिभीषण एक बार आओ ।

[बिभीषण का अचानक प्रवेश । उसे आते देखकर रावण—मन ही मन—

अरे, बिभीषण ! मैंने इसके साथ कितना अन्याय और कितना अनुचित व्यवहार किया—अभी मन ही मन सोच रहा था इससे क्षमा माँगने के लिए पर यह कैसे संभव है मेरे लिए—राजा यदि क्षमा माँगे तो वह राज्य कर चुका ! मैं अपने को दोषी क्यों मानूँ ? जिस राम ने शूर्पणखा की नाक काटी उसकी पत्नी का अपहरण सर्वथा न्यायसंगत है । मैंने जिसे लातमारकर निकाल दिया उसके साथ अब बोलचाल क्या ? जाय यह राम के पास । इसी ने रामदूत को शरण दे रखा है । इस राजद्रोही को प्राणदण्ड की सजा

मिलनी चाहिए। इसे और मन्दोदरी दोनों को। राम के पक्षधर दोनों ही हैं। दोनों ही धर्म की दोहाई देते हैं और सीता को वापस करने की बात कहते हैं। दोनों ही मेरे शत्रु हैं। अच्छा देखें, क्या कहने आ रहा है यह।]

बिभीषण—प्रणाम करते हुए : भाई, मुझे निष्कासित कर दिया है आप ने, पर मैंने सोचा एक बार मिलकर आपको न्याय-धर्म पर चलने के लिए प्रेरित करूँ जिससे लड्डा राष्ट्र का उद्धार हो और हमारा मस्तक ऊँचा हो सके। कुपथ पर चलने से सर नीचा हो जाता है भले ही कोई त्रिलोक का स्वामी हो। सत्य का प्रकाश कुछ और ही है। आप मुझे राष्ट्रद्रोही मानते हैं पर मैं राष्ट्र के हित के लिए ही आपके पास, आप से दुःस्थायी जाने पर भी, आता हूँ। मन्दोदरी भी बहुत दुःखी है यह देखकर कि आप महा-पंडित होते हुए भी नीति-अनीति पर विचार नहीं कर रहे हैं। सीता मानवी नहीं, देवी हैं—वे अस्वस्थ हैं पर कहती हैं मेरी बीमारी की खबर मानव-श्रेष्ठ रावण के पास न पहुँचे नहीं तो वे दुःखी होंगे। मैं किसी को दुःख नहीं देना चाहती। सब के भीतर एक क्षुद्र अहं है जो उच्च अहं को सदा दबाने को कोशिश करता है पर मनुष्य के भीतर बैठा परमात्मा इसमें विद्रोह करता है और बार-बार आत्मबल देता है मनुष्य को भूल सुधारने का। उनका कहना है मनुष्य क्रोध-मोह में भूल-अनाचार कर बैठता है पर वह पछताता भी है। हाँ, उसमें इतना साहस नहीं होता कि भूल स्वीकार करके अपनी आत्मा का अनुसरण करे और सत्यपथ पर चले। हमारा काम है ऐसे व्यक्ति में प्रेम-अहिंसा से ऐसा आत्मबल भर दें कि वह कुपथ छोड़कर सत्य पर चल सके। प्रत्येक व्यक्ति अंधकार से प्रकाश की ओर जाना चाहता है पर गर्व-अहंकार में वह सत्य को नहीं देख पाता—लंकेश तो मानवश्रेष्ठ हैं, लड्डा राष्ट्र के स्वामी हैं, उनके मन भी दृढ होगा। उन्हें ऐसा अवसर देना चाहिए कि वे अपने मार्ग का संशोधन कर सकें।

“लंकेश, हमें राष्ट्र के लिए कुछ करना है—उसकी गरीबी

उसकी निरक्षता; उसकी परतन्त्रता को दूर करना है। ये रचनात्मक काम ही राष्ट्र को सुदृढ़ कर सकते हैं। सीता को लौटाकर हम सब नव-निर्माण के कार्य में लगे—प्रजा का सुख पहले। प्रजा-राजा का सम्बन्ध पुत्र-पिता का है। सारी लज्जा भूख से जल रही है—भ्रष्टाचार जोरों पर है हमारे कार्यकर्ता जिनके पास अधिकार है गरीबों को चूस रहे हैं—खेती करने वाला भ्रष्ट अन्न नहीं पाता—कारिन्दा-सिपाही उठाकर अपने घर ले जाते हैं, चारों ओर त्राहि-त्राहि। मैं अपमानित होकर भी आप के पास आता हूँ; आप राष्ट्र की सेवा के लिए अपना हठ छोड़ दें और शांति का मार्ग लें। हनुमान जिस शांति-संधि का संदेश लाए हैं उस पर विचार कीजिए—बम्बूदीप-लज्जादीप की मंत्री से दोनों देश खुशहाल होंगे। युद्ध उन्नति का निदान नहीं है—प्रजा के हित के लिए तर्क के आश्रय पर निर्णय लें। हनुमान आपके पास आना चाहते हैं। दूत का आदर किया जाना चाहिए—दूत सभदने-भेटने की परम्परा पुरानी है। दूत से चाहे जो संदेश भेजें पर दूत के प्रति सद्ब्यवहार होना चाहिए। मेरा अनुरोध है कि आप स्वयं निर्णय लें अपनी आत्मा की पुकार सुनें कुविचारों को छोड़कर। हनुमान-सीता सभी लंका के प्रति उदार भाव रखते हैं। राम लज्जा के भूखे नहीं, वे जो पिता की ब्रात की पूरी करने के लिए वन आ गए हैं—अन्यथा उन्हें तो राजगद्दी मिल ही रही थी। राम ने भाई भरत के लिए राज्य छोड़ा, लक्ष्मण ने राम के लिए घर छोड़ा, सीता ने राम की सेवा के लिए वनवास स्वीकारा—इनका आदर्श है समाज का उत्थान, समाज के प्रति न्याय और पड़ोसी राष्ट्र की उन्नति। मेरी प्रार्थना है हिंसा-वृणा-बदला का भाव छोड़कर स्नेह-सेवा-मेलजोल का भाव अपनावें। अच्छाई को स्थान दें। इससे परिवार और राष्ट्र दोनों ही समृद्ध बनेंगे—मन्दोदरी की तुष्टि होगी और प्रजा को युद्ध की जगह निर्माण का अवसर मिलेगा। यह आग्रह हमारा आपकी शुद्ध आत्मा से है।

[रावण के भीतर द्वन्द्व है—क्या करूँ, क्या न करूँ। वह तर्क से

बिभीषण की बात मानना चाहता है पर हठ हावी है। उसका उदात्त अहं कहता है कि सीता देकर संधि करना ही श्रेयस् है पर धुद्र अहं—जड़ अहं चेतनता को दबा देता है। वह बिभीषण की बात को ही करना चाहता है पर अहंकार का दानव विरोध करता है। पाण्डित्य निर्णय में सहायक नहीं है। सत्य के प्रति श्रद्धा-भाव उठ-उठकर निष्क्रिय हो जाता है क्योंकि रावण शुभ विचारों का कार्यान्वयन नहीं करता इच्छा को क्रिया रूप में परिणत न करने से इच्छा दब जाती है।]

रावण—अरे, बिभीषण तुम किस मुँह से यहाँ फिर आ गए? जाओ शत्रु से मिलो। तुम्हारा राम मेरा बाल भोगे बाँका नहीं कर सकता। एक मन्दोदरी नहीं हजार मन्दोदरी भी मेरा बिगाड़ नहीं सकती। सीता पृथिवी से निकली है वह उसी में समा जायेगी। राम जीवन भर अकेले रहेंगे—जो अपनी अयोध्या को नहीं संभाल सका वह लङ्का में? उसकी दाल यहाँ नहीं गलेगी। बिभीषण, तुम नीति की बात करते हो यह तुम्हारा छल-छद्म है। मैं तुम्हारी बातों में, तुम्हारे मुलाके में नहीं आ सकता। हनुमान का साहस नहीं कि वह मेरे दरबार में आवे, उसे जिन्दा जलवा दूँगा—वह वनवासी भाग खड़ा होगा। वन का वानर राजनीति क्या जाने? राम की सेना वानरों की है। राम की विपत्ति में उसके भाई मेरु-शत्रुध्न कहाँ हैं? कोई उसका साथी नहीं। उसका ससुर जनक दुनियाँ से दूर—वह दार्शनिक युद्ध क्या जाने! बिभीषण, उदारता-न्याय की बात वे करते हैं जो दुर्बल हैं, असहाय हैं। दशानन अपनी मुजाओं पर गर्व करता है। शस्त्रबल ही महान् बल है। प्रजा की परवाह हमें नहीं, प्रजा मरे चाहे जिये—मेरी जिता एक ही है सीता लङ्का में रहे—जीवन भर कैदी रहें और राम विरह में धुल-धुल कर मरे। हनुमान से कह देना, अपनी खर चाहे तो लौट जाय नहीं तो यहीं खंभे पे बँववाकर उस पर कोड़े लगवाऊँगा। अभी इसका राक्षसों से पाला नहीं पड़ा है। तुमको देखकर वह समझता है कि लङ्का भले आदमियों की है पर लङ्का निशाचरों की, हिंसकों की है। लङ्का में भारत

का कोई आवेग उसे मौत ही मिलेगी—लङ्का लङ्कावासियों की है। हमें जो राक्षस कहते हैं वे स्वयं राक्षस हैं भले ही वे राम हों। राम स्वयं समुद्र पार नहीं कर सका इसलिए एक दूत को भेजा उसने। वह कायर, ऋषियों के बीच में रहनेवाला वह मानव, लङ्का की संस्कृति नहीं जानता। बिभीषण, जाओ कायरों से मिलो—न्याय की दुहाई दो। तुम लङ्का के लिए कलंक हो। तुम अपना नाम बदल दो—तुमने अपने नाम को सार्थक नहीं किया। तुम्हें देखते ही रामदूत को भयभीत होकर भाग जाना चाहिए था पर उसे तो तुमने मुँह लगा लिया है। तुम उसकी प्रशंसा कर रहे हो? रामदूत मेरा शत्रु है और उससे मिलनेवाले तुम भी मेरे शत्रु—मन्दोदरी का हृदय कीमल है वह सीता का पक्ष लेती है—पर औरतों के रोने-झोने के आगे रावण भुकेगा नहीं—नारी के आंसुओं की लकेश को परवाह नहीं। नारी जन्म से ही मूढ़ होती है वह पुष्पों की सेवा के लिए बनाई गई है, उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं। नारी पूजा की नहीं ताड़ना की चीज है। नारी आत्मदाह कर सकती है संग्राम में लड़ नहीं सकती। वह मुझे भय दिखाती है आमरण अनशन का। उसके मरने-जोने की मुझे परवाह नहीं—रावण जो चाहता है वही न्याय है—रावण किसी धर्मशास्त्र को नहीं जानता। धर्म कायरों की भाषा में है।

जाओ बिभीषण, मेरी आँखों के सामने से हट जाओ मैं एक क्षण भी तुम्हें देखना नहीं चाहता—अभी तक तुम्हें प्राणदण्ड नहीं मिला यही क्या कम है पर यदि तुम इसी तरह हमारी नीति का विरोध करते रहोगे तो तुम्हें बखशा नहीं जायगा—भले ही मन्दा तुम्हारा पक्ष ले। रावण किसी के भरोसे नहीं—अकेला काफी है राम से द्रुपद के लिए। सीता के सम्मुख उसका पति अंतिम साँस ले यही मेरी अभिलाषा है। साकेतवासी लङ्का में मृत्युदण्ड पावे तभी हमारा लक्ष्य पूरा होगा। बिभीषण सुना है, तुम्हें संत कहा जाता है जाओ साधु-संत-वैरागी-वनवासियों बनो—ध्यान-धारणा करो। जसो, लङ्का की सीमा में तुम्हारे लिए जगह नहीं।

सातवाँ सोपान

[हेतुमान चिंतन की स्थिति में—मन ही मन—

मन्दोदरी और विभीषण दोनों ने अलग-अलग लंकेश को न्यायपथ, सान्वपथ, श्रेयस् पथ पर चलने के लिए प्रेरित किया पर वह हठ की रक्षा में ही हित मान रहा है। मनुष्य बड़ा पेचीदा प्राणी है—वह सत्पथ जानता तो है पर वासनाओं की भूख की संतुष्टि में ही अपनी शक्ति विनष्ट करता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह सामाजिक सम्बन्धों से ही पला है—उसे जो कुछ मिला है वह समाज से ही। पर वह क्षुद्र अहं की तुष्टि में सारे सामाजिक उत्तरदायित्व भुला देता है। जहाँ उसे समाज के साथ सहयोग करना चाहिए, जहाँ उसे समाज के कल्याण में अपना हित मग्नना चाहिए, जहाँ उसे व्यक्ति और समाज में एकता स्थापित करनी चाहिए वहाँ वह समाज की अवहेलना कर उसके शोषण में जुट जाता है, वह अहिंसात्मक जीवन व्यतीत करने के बजाय हिंसक बन बैठता है अथवा दूसरों का अहित कर अपने लोभ-अहंकार की तुष्टि करता है। मनुष्य अंतरात्मा की आवाज सुनना नहीं चाहता यदि सुनता भी है तो उस पर अमल नहीं करता फलतः वह समाज-साधुविरोधी तत्त्वों से सम्बन्ध जोड़ लेता है। आन्तरिक निर्मलता, लगता है, ईश्वरदत्त होती है—ज्ञान-उपदेश, सम्मति से यह सुलभ नहीं।

ऐसा संभव नहीं कि रावण के भीतर प्रकाश-अधिकार का, सत्-असत् का, अहिंसा-हिंसा का, शांति-उद्विग्नता का संघर्ष न हो रहा हो पर उसके उदात्त अहं को कैसे इतना सबल बना दिया जाय कि उसे प्रकाश की पहचान

हो सके और वह अंधकार में रहने की आदत छोड़कर आलोक-आनन्द में रहना चाहे। उसके संस्कारों पर प्रभाव डालना होगा, उसके सोचने की दृष्टि बदलनी होगी, उसमें चेतना उत्पन्न करनी होगी सत्य-शिव-सुन्दर-आनन्द के प्रति। बिभीषण भाई है। सामान्यतः लोग घरवालों का आदर नहीं करते क्योंकि उनके साथ ईर्ष्या-द्वेष-मोह जुटा होता है। रही मन्दोदरी, वह सती साध्वी है। पर, परम्परा से पुरुष वर्ग स्त्री पर हावी रहा है इसलिए नारी की अवहेलना होती रही है। पत्नी हितैषिणी होती है पर पुरुष अपने अहंकार के आगे पत्नी की बात स्वीकार करने में आनाकानी करता है—वह अपने को स्वामी मानता है और पत्नी को दासी। रावण को दोषी क्यों मानें—सामाजिक संस्कार जिम्मेदार हैं सारी कुरीतियों के। हमारी शिक्षा केवल किताबी ज्ञान देती है वह संस्कार को संस्कृत नहीं करती। संस्कार संतंसंग से सुन्दर बनते हैं। परिवेश जीवन-निर्माण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

जो भी हो, अपना कर्तव्य पूरा करूँगा। एक बार रावण के दरबार में जाकर विनम्रता से उसकी चित्तवृत्ति को सद्भावों की ओर मोड़ने का प्रयत्न करूँगा। काश, लंकेश स्व की जगह लोकभावना, लोकसंग्रह की ओर झुकता। यदि अपना हठ छोड़कर सत्कर्मों की ओर बढ़े तो निश्चय ही वह महान् मानव बन सकता है—इच्छा शक्ति तो उसमें है ही। उसके पास पाण्डित्य है पर उससे जीवन का सम्बन्ध नहीं—दोनों में समन्वय नहीं। पंडिताई भी बाधक है आत्म-विकास में—हृदय-शुद्धि का सम्बन्ध सम्यक् आचरण से है। पाण्डित्य तर्क के लिए है—गलत को ठीक बताने के लिए है, अन्याय को न्याय साबित करने में है। पंडित भले ही शास्त्रों का उद्धरण दे पर जीवन में वह नहीं उतार पाता ज्ञान को—उसका ज्ञान कर्म से शून्य होने के कारण गधे का बोझ जैसा है। आचरण की पवित्रता तर्क से नहीं श्रद्धा से संभव है। श्रद्धा हृदय की शुद्धि की अपेक्षा रखती है। हृदय शुद्ध होते ही जड़ता चली जाती है, दृष्टिकोण उदार हो जाता है और मनुष्य

में सदभाव-समभाव का अविर्भाव होता है। वह दूसरों के कष्ट को अपना कष्ट मानता है। उसका जीवन भोग में नहीं त्याग में बीतता है। वह चिन्ता नहीं करता। सत्य की प्राप्ति के लिए वह चिन्तन करता है। यह सारा आन्तरिक परिवर्तन मनुष्यमात्र को ईश्वर का रूप मानने से ही संभव है। ईश्वर के प्रति विश्वास के साथ संकीर्णता नहीं टिक सकती। जहाँ भावनाएँ संकीर्ण हैं वहाँ समता-समरसता नहीं। समत्व नहीं तो ईश्वरत्व नहीं।]

[हनुमान को दरबार में प्रवेक्ष करते देखकर रावण—मन ही मन—

अरे, यह कैसा आलोक ! कैसा सौंदर्य ! कैसा तेज ! कैसी कान्ति ! यह मणि की आभा से भी अधिक निर्मल कौन ! सचमुच, यह देवत्व है ! किसी परलोक का यह प्राणी। तभी तो विभीषण इसके प्रभाव में अंधा है—वह रात-दिन इसी का ध्यान करता है और राज-काज से उसे वैराग सा हो गया है। विभीषण के साथ इतना अन्याय-अतिचार किया मैंने पर उसका साधु-भाव मेरे प्रति बना हुआ है। वह हनुमान की देखकर राम की कल्पना करता है। मन्दीदरी तो पूर्ण समर्पित है। सीता और रामदूत के प्रति। उसे मेरे परिवार से प्रेम नहीं—वह सतत सत्य की उपासिका है। मुझे बार-बार हठ छोड़कर सीता के लौटाने की बात कहती है पर क्या कल राक्षसत्व सचाई स्वीकार करने ही नहीं देती। मन्दीदरी की पवित्रता इतनी ऊँची है कि देवता भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकते। मैं कितना अधम, उसे भी लात मारकर भगा दिया है। है कोई जो इस अंधकार में मुझे आलोक दे, इस पतन से मुझे बचावे। मेरे भीतर ज्वाला है पर साहस नहीं कि एक झटके में सारे अहंकार की जंजीर को तोड़ दूँ और विभीषण-मन्दा की पवित्रता को प्राप्त कर सकूँ।

मेरे शंकर, मेरी दुर्गा, क्या मैंने जीवन भर राक्षसत्व की ही उपासना की ? लगता है हम अपने विचारों की उपासना करते हैं किसी और की

नहीं—मैंने तप में वही तो माँगा जो मुझे अनुकूल लगा। भीतर के देवता को भुलाकर बाहर के देवता से अपने मन की वासनाओं की पूर्ति के लिए भीख माँगना क्या पुरुषत्व है ? मेरा सारा पाण्डित्य किस काम का ? अभिमान-मद-मत्सर में जला जा रहा हूँ। इन्होंने ऐसा जकड़ रखा है कि चाहते हुए भी इनसे पिंड नहीं छुड़ा सकता हूँ। हनुमान ! मैं सब समझ रहा हूँ पर मेरी विवशता को कोई नहीं समझ रहा है, मैं परतन्त्र हूँ—राजा होते हुए भी गुलाम हूँ, शक्ति होते हुए भी वीर्यहीन हूँ। लक्ष्मण-रेखा जो न तर्क सका वह किस शक्ति पर घमंड कर रहा है ? जो जटायु पक्षी से जीत न सका और कायर की भाँति उसके पंख काटकर मैदान से भाग खड़ा हुआ वह लङ्कापति होने का गर्व करता है ! जो राम-लक्ष्मण से सीधे युद्ध न कर सीता नारी को चोरी से हर लाया क्या वह विजेता कहा जायगा ? धिक्कार है ऐसे नपुंसक को.....पर—पर.....हनुमान के आगे तो निर्भीक बनना होगा—यह रावण का दरबार है।]

[हनुमान सिंहासन के पास पहुँचकर सविनय नमस्कार करते हुए—

लंकेश, मैं रामदूत हूँ। मैं पवनपुत्र, अंजनासुत हूँ। मैं सृष्टी का सेवक हूँ। मैंने मानव के कल्याण का व्रत ले रखा है। विश्व-बंधुत्व की भावना सारी सृष्टि में व्याप्त हो यही राम का संदेश है, मैं उसी का वाहक हूँ। भले ही आपने सीता को हरकर लङ्का में रख लिया है पर राम को आपसे द्वेष नहीं—वे यही चाहते हैं कि आप क्षुद्र अहं से मुक्त होकर परम धर्म को समझें और तदनुकूल आचरण करें। आपके पाण्डित्य को कौन नहीं जानता पर आपके कर्म उसके अनुकूल नहीं हैं। मैं अपने पिता का अनुसरण कर यहाँ पहुँच सका हूँ और मेरा धर्म है सबके प्राणों की रक्षा। मेरी माँ ने अंतिम क्षण में एक ही सीख दी कि अपने लिए नहीं दूसरों के लिए जीना—सारे सौंदर्य का यही गुण है। बाहरी शृंगार, बाहरी अंजन, वास्तविक शोभा नहीं शोभा है भीतरी आलोक की। भीतर की ज्योति न बुझे यही मानवता है। लङ्कापति, क्षमा करें सेवक को—मैं आपको उपदेश देने योग्य नहीं और त

मैं उपदेश देने आया ही हूँ । मेरा लक्ष्य है मानवता की चेतनता उत्पन्न करना प्राणी-प्राणी में—सब में समरसता का, सद्भाव का प्रसार करना ।

लंकेश, मैं दूत हूँ । यदि कोई भूल हो तो क्षमा योग्य हूँ । यों, मैं नहीं बोल रहा हूँ मेरे राम बोल रहे हैं—राम जो धर्म-नाभ हैं, जो सत्य-संघ हैं, जो करुणानिधान हैं, जो जगत्-पालक हैं । उनका अनुग्रह ही मेरा बल है उसी बल से समुद्र पार कर सका—मेरा अपना कुछ नहीं ।

लङ्का द्वीप सोने का दीप कहा जाता है पर सोने की दीप्ति का गौरव तभी है जब मनुष्य सोने की भाँति ही बारहबानी हो—परिशुद्ध हो, निर्मल हो । निर्मलता के लिए क्षुद्र अहं से मुक्ति प्राप्त करनी होगी । मनुष्य इसी मुक्ति के लिए सतत संघर्षशील है । यह गौरव मनुष्य को ही प्राप्त है कि वह इसी जीवन में ब्रह्मत्व, ईश्वरत्व, शिवत्व प्राप्त कर सकता है । मैं मानता हूँ कि संस्कारों-वासनाओं का मनुष्य के विकास में बहुत बड़ा हाथ होता है पर सतत संघर्ष से जब पत्थर घिस सकता है तो सतत प्रयत्न-पुरुषार्थ से दिव्यत्व भी प्राप्त हो सकता है ।

दशमुख ! आप शिवभक्त हैं । शिव कल्याण-मङ्गल के देव हैं । उनसे आलोक माँगिए वे सम्यक् मार्ग बता सकेंगे । सीता शक्ति ही है । आप शक्ति के उपासक हो । सीता और शक्ति के अभेदत्व को आपने अनुभव किया होगा । फिर क्या देरी है ? सीता को राम को सौंप कर शिव-शक्ति के युग्म को पूरा करें । एकता ही जीवन है । अद्वयत्व के आप उपासक हैं फिर हिचक क्यों ? लिंग शिव-शक्ति के एकत्व का प्रतीक है । आप शास्त्रज्ञ हैं । अनुरोध है एकता-मिलन में सहयोग दें । बाधक न बनें पुण्यानुभावा !

लंकेश्वर, एक अन्तिम बात—सीता-राम, शक्ति-शिव के प्रतिरूप हैं । मन्दोदरी-रावण भी उसी के प्रतीक हैं केवल धात्मसाक्षात्कार की अपेक्षा है । शक्ति के सदुपयोग में, उसकी अनुकूलता में ही मुक्ति है । शक्ति की उपासन

करते हुए सीता से वैर ? पहचानिए माँ सीता को—उस सर्व-मङ्गला कल्याणी माँ को जो किसी के भी दुःख को अपना दुःख मानती है। वे नहीं चाहती कि उसके लङ्का में रहते लङ्का की क्षति हो। वे चाहती हैं लङ्का राष्ट्र में नवजीवन का संचार हो उसे भारत के साथ मित्रवत् वे देखना चाहती हैं ताकि यहाँ की प्रजा वही सुख उठा सके जो राजा उठाता है।

रावण प्रजासुख की बात सुनते ही अपने अहंकार की अभिव्यक्ति करता हुआ—

अरे रामदूत ! यहाँ की प्रजा पर राजा का अधिकार है तुम कौन हो प्रजा का पक्ष लेकर बोलनेवाले—यह लङ्का है यहाँ रावण का एकछत्र राज्य है। जो यहाँ की राजनीति-समाजनीति में दखल देगा उसका यहाँ जीवित रहना संभव नहीं है। बिभीषण प्रजा को भड़काता फिरता है वह भी उनकी असहायावस्था की बात करता है, वह राम राज्य की वकालत करता है—वह दुष्ट, राष्ट्रद्रोही अपने कुकर्म के कारण निष्कासित है। भाई हो या पत्नी जो मेरे अधिकार में दखल देगा वह मेरे कोप का भाजन बनेगा। यही यहाँ का न्याय है। सीता कौन है यह मैं नहीं सुनना चाहता। वह बंदी है रावण-राज्य में। देखें उसे कौन मुक्त करा सकता है ? पवन का नाम कलंकित करनेवाले अंजनासुत ! दूत अवध्य है नहीं तो अभी हाथी के पावों से तुम्हें कुचलवाकर समुद्र में फेंकवा देता। लौट जाओ, शेखी न बघारो। अपने स्वामी को सीता के विरह में घुलघुलकर मरने दो। दया की भीख मत माँगो। रावण का बाहुबल भारत के साधु सन्त क्या जानें ! मन्त्री, इस दूत को मारो नहीं पर इसका अंगभंग कर दो ताकि यह राम के पास पहुँचने के योग्य न रह जाय। यही भेंट है इस दूत के लिए।

[बिभीषण-मन्दोदरी का सहसा दरबार में प्रवेश—दोनों एक स्वर से—

अंगभंग का अधिकार नहीं किसी को, भले ही वह राजा हो। प्रजा राजा का अंग है—किसी प्रजा, किसी प्राणी का अङ्ग-भङ्ग करना मानवता के विरुद्ध है। हनुमान के अङ्ग-भङ्ग का आशय है हमारा अङ्ग-भङ्ग, लङ्का का अङ्ग-भङ्ग, राष्ट्र का अङ्ग-भङ्ग। राष्ट्र के गौरव को बेचने का अधिकार किसी को नहीं। उसे हम राजा नहीं स्वीकारते जो प्रजा को कुचलकर अपने को गौरवान्वित मानता है। लङ्काद्वीप शिवलोक है यहाँ अशिव नहीं हो सकता। लङ्कापति ! सारी प्रजा एक स्वर से आप के प्रस्ताव का विरोध करती है।

प्रजागण—हनुमान रामदूत हैं, मानवदूत हैं, क्रान्तिदूत हैं। हम हनुमान के साथ हैं। हम सत्य के साथ हैं, भले ही लङ्कापति हमें निष्कासित करें। राम धर्म के, सीता शक्ति की, हनुमान सेवा के प्रतीक हैं। सारी प्रजा राम की है। हम भुखे मर रहे हैं—हमें रोटी चाहिए, हमें न्याय चाहिए। लंकेश ! सीता को सौंप दो रामदूत को नहीं तो लङ्का का अङ्ग-अङ्ग विनष्ट हो जायगा, राजा-प्रजा सब का सर्वनाश हो जायगा। मन्दोदरी सती है, साध्वी है, उसका अपमान राष्ट्र का, नारी का, मानवता का अपमान है। लंकेश, बिभीषण लङ्का-राष्ट्र का रक्षक है, प्रजा उसकी है वे प्रजा के हैं। बिभीषण हमारे राजा हैं आप नहीं। वे प्रजापालक हैं, आप नहीं।

S. RAMAKRISHNA SHARMA
LIBRARY SRINAGAR
Accession No-... 4002...
Date